नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 138 • वर्ष 12 अंक 11
दिसम्बर 2009 • तीन रुपये • 12 पृष्ठ

यह महँगाई ग़रीबों के जीने के अधिकार पर हमला है!

पूँजीपतियों को अरबों डॉलर के बेलआउट पैकेज देने वाली सरकार ग़रीबों को भुखमरी से बचाने की ज़िम्मेदारी लेने को तैयार नहीं

सम्पादक मण्डल

यह महँगाई आने वाले भीषण संकट का पूर्व-संकेत है। हर संकट की तरह इसकी भी गाज अन्ततः ग़रीबों पर ही गिरनी है। लेकिन देश की ग़रीब जनता चुपचाप इस संकट को बर्दाश्त नहीं करती रहेगी। मेहनतकशों की भारी आबादी में सुलगता असन्तोष जगह-जगह फूट रहा है। देश के हुक्मरान महँगाई पर क़ाबू पाने के लिए भले ही कुछ न कर रहे हों, ग़रीबों के सम्भावित विस्फ़ोटों को रोकने के लिए वे अपने दमन तन्त्र को चाक-चौबन्द करने में जुट गये हैं।

पिछले कुछ दिनों से अख़बारों और टीवी पर लगातार ऐसी ख़बरें आ रही हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था अब मन्दी से उबर रही है और विकास दर सभी पूर्वानुमानों से ज़्यादा बनी हुई है। देश के शासकों, पूँजीपतियों और उच्च मध्यवर्ग के चेहरे खिले हुए हैं। लेकिन "विकास" की इस तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि महँगाई बेलगाम बढ़ती जा रही है। खासकर खाने-पीने की चीज़ों के आसमान छूते दामों ने देश की 85 प्रतिशत ग़रीब और निम्न मध्यवर्गीय आबादी के सामने जीने का संकट पैदा कर दिया है। एक ओर आम आदमी की ज़रूरत की हर चीज़ महँगी होती जा रही है, दूसरी ओर बहुसंख्यक मेहनतक़श आबादी की आमदनी लगातार कम हो रही है। बेरोज़गारी, छँटनी, वेतन में कटौती के चलते मज़दूरों की आमदनी कम हुई है और चौतरफ़ा मन्दी तथा बहुसंख्यक आबादी की आय कम होने के कारण छोटे-मोटे धन्धे करके गुज़ारा करने वाली अर्द्धसर्वहारा आबादी भी जैसे-तैसे पेट भरने की हालत में पहुँच गयी है।

ख़ुद सरकारी आँकड़ों के मुताबिक खाने-पीने की चीज़ों की महँगाई 15 प्रतिशत से भी ज़्यादा हो चुकी है। यह पिछले ग्यारह साल का रिकॉर्ड है। वैसे महँगाई के आँकड़े थोक मूल्यों पर आधारित होते हैं इसलिए 15 प्रतिशत महँगाई बढ़ने का मतलब होता है कि चीज़ों की वास्तविक महँगाई दो गुने से लेकर छह गुने तक हो चुकी है। इस महँगाई की सबसे भयंकर बात यह है कि आटा, चावल, आलू, प्याज़, चीनी, तेल जैसी चीज़ों की महँगाई कम होने का नाम ही नहीं ले रही है जिनके बिना ग़रीब के लिए दो वक़्त पेट भरना भी मुश्किल हो रहा है।

वैसे तो हिन्दुस्तान जैसे देश में महँगाई कोई नयी बात नहीं है, लेकिन शायद पहली बार ऐसा है कि सरकार ने महँगाई पर क़ाबू पाने की ज़िम्मेदारी से ही पल्ला झाड़ लिया है। कृषि मन्त्री शरद पवार ने साफ़ कह दिया कि रबी की फ़सल आने तक वे कुछ नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, दिल्ली जैसे राज्यों की सरकारें तो बस किराये, पानी, बिजली आदि की क़ीमतें बढ़ाकर ग़रीबों की जेब से रही-सही कौड़ी भी लूट लेने पर आमादा हैं।

महँगाई के मसले पर यूपीए सरकार लगातार बहानेबाज़ी और चालाकी का रवैया अपनाती रही है। कभी वह सूखे को, कभी वैश्विक आर्थिक संकट को तो कभी बिचौलियों और जमाखोरों या राज्य सरकारों को ज़िम्मेदार ठहराकर खुद किनारे हो जाने की कोशिश करती रही है। असलियत यह है कि इस महँगाई की सबसे बड़ी ज़िम्मेदार केन्द्र सरकार की नीतियाँ हैं। इस महँगाई की वजह सिर्फ़ यह नहीं है कि अनाज और फल-सब्ज़ियों की आपूर्ति में सूखे या अन्य कारणों से तात्कालिक तौर पर कमी आ गयी है। इसके कारण कहीं गहरे हैं। इस स्थिति के लिए कृषि की लगातार उपेक्षा, खाद्यान्न के प्रबन्धन में नौकरशाहाना लापरवाही और भ्रष्टाचार, बिचौलियों और जमाख़ोरों को खुली छूट, खाद्यान्न और कृषि उपज के वायदा कारोबार की छूट देने जैसे बहुतेरे कारण ज़िम्मेदार हैं। पूँजीवाद में उद्योग के मुक़ाबले कृषि हमेशा ही पिछड़ती जाती है और उदारीकरण के इस दौर में कृषि की उपेक्षा और भी ज़्यादा बढ़ गयी है। तुरन्त मुनाफ़ा देने वाली नकदी फसलों पर ज़ोर अधिक होने के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन का रकबा लगातार कम होता जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार देशभर में बन रहे विशेष आर्थिक क्षेत्रों (सेज़) के लिए किसानों से ली गयी ज़मीन देश की कुल खेती लायक़ ज़मीन के क़रीब एक प्रतिशत के बराबर है। एक प्रतिशत सुनने में तो कम लगता है लेकिन अगर देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ने वाले इसके असर का अनुमान लगाया जाये तो समझा जा सकता है कि सरकार पूँजीपतियों को मुनाफ़ा पहुँचाने के लिए किस तरह देश की जनता के मुँह से निवाले छीनने का काम कर रही है।

बेशर्मी का आलम यह है कि केन्द्र सरकार के मन्त्री इस महँगाई को भी अपनी नीतियों की सफलता का आईना बता रहे हैं। उनके हिसाब से नरेगा और दूसरी योजनाओं के कारण ग़रीबों की आय बढ़ी है और अब वे पहले से ज़्यादा अनाज आदि ख़रीद रहे हैं जिसके कारण इनकी क़ीमतें बढ़ रही हैं। यह वही बेहूदा तर्क है जो पिछले साल तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश दे रहे थे। जब दुनिया में खाद्यान्न की क़ीमतें बेतहाशा बढ़ रही थीं तो बुश ने कहा था कि भारत और चीन

(पेज 5 पर जारी)

लिब्रहान रिपोर्ट : जिसके तवे पर सबकी रोटियाँ सिंक रही हैं

कार्यालय संवाददाता

संघ परिवार द्वारा जुटायी गयी उन्मादी भीड़ और हिन्दू फ़ासिस्ट संगठनों के प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं द्वारा 6 दिसम्बर 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिराये जाने की जाँच के लिए गठित जस्टिस लिब्रहान आयोग की रिपोर्ट 17 वर्ष बाद जिस तरह से पेश की गयी, उससे सभी पार्टियों के हित सध रहे हैं। एक ऐहिासिक मस्जिद को गिराने और पूरे देश को विभाजन के बाद के सबसे भीषण दंगों की आग में धकेलने वाले संघ परिवार और उसके नेताओं के राजनीतिक करियर पर इस रिपोर्ट से कोई आँच नहीं आने वाली है। इस साज़िश में शामिल और इसे शह देने वाले कांग्रेसी प्रधानमंत्री नरसिंह राव और पूजा के लिए मस्जिद का ताला खुलवाने से लेकर शिलान्यास करवाने तक क़दम-क़दम पर भाजपा का रास्ता आसान बनाने वाली कांग्रेस को भी इससे कोई नुकसान नहीं होने वाला। सच तो यह है कि कांग्रेस और भाजपा से लेकर मुलायम सिंह यादव तक सभी इससे अपने-अपने हित साधने में लगे हुए हैं।

भीषण महँगाई, गन्ना किसानों के आन्दोलन आदि मुद्दों पर विपक्ष के हमलों से परेशान कांग्रेस ने रिपोर्ट की ख़बर लीक कराकर बड़ी ख़ूबी से विपक्ष और मीडिया का ध्यान दूसरी दिशा में मोड़ दिया। भाजपा को भी मरे हुए मन्दिर मुद्दे में जान फूँकने के लिए इस रिपोर्ट का इस्तेमाल करने की सम्भावना नज़र आयी और उसने संसद में हंगामा मचाना शुरू कर दिया। अप्रासंगिक होते जा रहे आडवाणी को इस रिपोर्ट के बहाने एक बार फिर हिन्दुत्व का झण्डाबरदार बनने और संघ परिवार से अपने नेतृत्व पर मुहर लगवाने का मौका मिल गया।

उधर, बाबरी मस्जिद ढहाने के समय उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे कल्याण सिंह से दोस्ती गाँठकर नया वोट समीकरण बनाने की कोशिश में बुरी तरह मुँहकी खाने के बाद फिर से अपने मुस्लिम वोट बैंक को बटोरने के लिए कोई मौका तलाश रहे मुलायम सिंह को तो जैसे मुँहमाँगी मुराद मिल गयी। मुसलमानों के हितों की दुकानदारी करने वाले तरह-तरह के मुस्लिम संगठनों को भी कुछ दिनों तक बयानबाज़ी करने का एक मुद्दा मिल गया।

रिपोर्ट लीक होने को लेकर शोर मचा रहे भाजपा नेताओं ने उस सच्चाई को दरकिनार करने की पूरी कोशिश की जिसे रिपोर्ट में सामने लाया गया है और जिसे हर कोई पहले से जानता था – चाहे वह कट्टर हिन्दू हो, मुस्लिम हो या एक आम धर्मनिरपेक्ष नागरिक हो। वह सच्चाई यह है कि संघ परिवार के विभिन्न संगठनों ने सोची-समझी रणनीति के तहत योजनाबद्ध तरीके से बाबरी

(पेज 5 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

- शान्तिकाल में पूँजी के हाथों सबसे बड़े हत्याकाण्ड का नाम है भोपाल – पृ. 6
- संसदीय "वामपंथियों" के राज्य में हज़ारों चाय बाग़ान मज़दूर भुखमरी की क़गार पर – पृ. 4
- लुधियाना में हज़ारों मज़दूरों के गुस्से का लावा फूटा – पृ. 12
- अमीरों के लिए सजती दिल्ली में उजड़ती ग़रीबों की बस्तियाँ – पृ. 3
- फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें? – पृ. 7
- क्रान्तिकारी चीन ने प्रदूषण की समस्या का मुकाबला कैसे किया – पृ. 9
- जोसेफ़ स्तालिन : क्रान्ति व प्रतिक्रान्ति के बीच विभाजक रेखा – पृ. 10
- कम्युनिस्ट जीवनशैली के बारे में माओ त्से-तुङ के उद्धरण – पृ. 11

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

गोरखपुर मज़दूर आन्दोलन को आम नागरिकों का समर्थन

बरगदवां के कारख़ानों में पिछले दिनों चला मज़दूर आन्दोलन आसपास के मोहल्लों में अब भी चर्चा का विषय बना हुआ है। बरगदवां, भगवानपुर, बिचउआपुर, विस्तारनगर, मोहरीपुर, घोसीपुरवां, गिदहवां, राजेन्द्र नगर, शास्त्री नगर इन सभी मोहल्लों के लोग कभी डीएम कार्यालय पर धरने तो कभी योगी आदित्यनाथ के बयानों के बारे में बातें करते रहते हैं।

मज़दूर जब धरना-प्रदर्शन या वार्ता से लौटकर आते तो मोहल्ले में घुसते ही सब्ज़ी बेचने वाले से लेकर किराने के दुकानदारों, मकानमालिकों तक की उत्सुकता होती कि आज क्या हुआ? स्थानीय लोग मालिकों द्वारा कई सालों से मज़दूरों के शोषण और अत्याचार को हिकारत से देखते हुए कहते कि हम आपके साथ हैं। एक मकानमालिक ने कहा कि आप लोग लड़िये चाहे जितनी लम्बी लड़ाई हो मेरे किराये की चिंता मत करिये। इसी तरह से भगवानपुर मोहल्ले के एक मकान मालिक ने सभी किरायेदारों के चूल्हों में गैस भराकर कहा तुम बनाओ खाओ जब पैसा होगा तब देना।

मुस्लिम बहुल मोहल्ला घोसीपुरवां में उस वक्त त्योहारों जैसा माहौल होता जब लिट्टी-चोख के लिए राशन जुटाया जाता। पाँच-छह घरों के बीच में दो लोग बोरा लेकर खड़े हो जाते और आसपास के लोग आटा, चावल, आलू, दाल, बैंगन बोरे में डालते जाते। कुछ ऐसा ही माहौल बरगदवां और मोहरीपुर की सब्जी मण्डियों का भी होता। ये वही घोसीपुरवां के लोग है जो पुलिस के आतंक से हमेशा सशंकित रहते थे। ये पुलिस के नाम से ऐसे ही डरते थे जैसे छोटे बच्चे किसी शैतान का या अदृश्य राक्षसी शक्ति से डरते हैं।

दूसरी ओर इसके उलट बात भी सुनने में आती थी। स्त्री मज़दूर विमला सिंह के कमरे के बगल में सुपरवाइज़र का परिवार रहता है। सुपरवाइज़र की पत्नी विमला सिंह को देखते ही भौहें चढ़ाकर व्यंग्य भरी मुस्कान से पूछती क्यों मान ली गयी माँग? मिल गया हक़? बथवाल तुम औरतों को कभी काम पर नहीं रखेगा चाहे सात-जनम तक लड़ती रहो। कुछ ऐसे भी मकान मालिक, सरकारी नौकरी वाले और ठेकेदार जैसे लोग थे जो कहते थे कि शोषण आदिकाल से होता आया है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। अमीर-ग़रीब को भगवान ने बनाया है जब तक दुनिया रहेगी तब तक अमीर-ग़रीब का शोषण करते रहेंगे। ये वही लोग हैं जो आज़ादी की लड़ाई में कहा करते थे जिन अंग्रेजों के राज्य में सूरज नहीं डूबता वे अंग्रेज कभी भारत छोड़कर नहीं जायेंगे।

● **अवधेश, गोरखपुर**

लुधियाना की सड़कों पर हज़ारों मज़दूरों का प्रदर्शन

(पेज 12 से आगे)

रहे लूट, शोषण, अन्याय, अपमान का नतीजा था।

मज़दूरों के इस गुस्से का फ़ायदा उठाने के लिए क्षेत्रीय राजनीति करने वाले मदारी काफ़ी सक्रिय थे। वे भी मज़दूरों के इस गुस्से को साधारण पंजाबी आबादी के ख़िलाफ़ मोड़ने के लिए ज़ोर लगाते रहे और इस राजनीति में वे कुछ हद तक सफल भी हुए। प्रदर्शन के दौरान ज़बरदस्ती दुकानें बन्द करवाने, कारों, स्कूटर यहाँ तक कि साइकलों की तोड़-फोड़ भी करवाई गयी। नतीजतन कुछ हद तक पुलिस-प्रशासन 4 दिसम्बर को लुधियाना में होने वाली इन घटनाओं को यू.पी.-बिहार के प्रवासियों और पंजाबियों के बीच की झड़पों का रूप देने में कामयाब हो गया। मज़दूरों में घुसे बैठे क्षेत्रीय राजनीति करने वाले और आवारा तत्वों की तोड़-फोड़ और आगजनी की कार्रवाइयों ने पुलिस, सरकार, मालिकों और उनके भाड़े के गुण्डों को यह मौक़ा दे दिया कि वे मज़दूरों के प्रदर्शन को बदनाम कर सकें और साधारण पंजाबी मज़दूर आबादी को अपने ही मज़दूर भाई-बहनों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल कर सकें।

इसमें कोई शक नहीं कि इस घटना ने एक बार फिर शहरी मज़दूर आबादी में बेचैनी को जगज़ाहिर कर दिया और उनमें छुपी हुई ताक़त का नज़ारा पेश किया है, भले ही इस आन्दोलन की ख़ामियों के चलते इसे फ़िलहाल दबा दिया गया है। मज़दूरों का अपने साथ हुए अन्याय के ख़िलाफ़ गुस्सा पूरी तरह जायज़ था, लेकिन मज़दूरों का विरोध प्रदर्शन पूरी तरह स्वयंस्फूर्त था, जिसमें जनवादी और क्रान्तिकारी नेतृत्व का अभाव था, और क्षेत्रीय राजनीति करने वालों और आवारा तत्वों की भरमार थी। इसलिए मज़दूरों का यह विरोध-प्रदर्शन कुचला जाना तय था। लेकिन मज़दूरों के इस विरोध-प्रदर्शन ने दिखा दिया कि जब मज़दूर एकजुट होकर शोषकों का सामना करते हैं तो किस तरह सत्ताधारियों के हथियारबन्द दस्तों को भी दाँतो तले उँगलियाँ दबानी पड़ती हैं। अन्दाज़ा लगाना मुश्किल नहीं होगा कि अगर मज़दूरों के पास जनवादी और क्रान्तिकारी नेतृत्व हो और धर्म-जाति-क्षेत्रीयता के नाम पर राजनीति करने वाले मज़दूर विरोधी राजनीतिक तत्वों से पीछा छुड़ाकर सभी मज़दूर पूरी तैयारी के साथ लड़ें तो वे किसी भी ताक़त का सामना कर सकते हैं। अगर मज़दूर वर्गीय आधार पर एकजुट होकर पूँजीपतियों, सरकार, पुलिस, प्रशासन और गुण्डा-गिरोहों के गठबन्धन का सामना करें, तो मज़दूर आन्दोलन के कुचले जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

पंजाब में मज़दूरों को संगठित करने की कोशिशों में जुटे ईमानदार और प्रतिबद्ध संगठनों के सामने व्यापक मज़दूर आबादी को संगठित करना इतना आसान नहीं है। मज़दूर आन्दोलन को विफल करने के लिए हुक्मरानों के पास मेहनतकश आबादी में व्यापक स्तर पर फैली क्षेत्रीय भावनाएँ एक बेहद घातक हथियार है। जब भी पंजाब में कोई गम्भीर मज़दूर आन्दोलन उठेगा हुक्मरान क्षेत्रीय राजनीति के पत्ते का इस्तेमाल करेंगे और मज़दूर आन्दोलन को अपनी सही राह से भटकाने की कोशिश करेंगे। यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। पंजाबी आबादी को यह समझना होगा कि उनकी समस्याओं का कारण पूँजीपतियों द्वारा मेहनतकश जनता की हो रही निर्मम लूट है और इस लूट की चक्की में पंजाब में पहले से रह रहे और अन्य राज्यों से आकर यहाँ बसे मज़दूर बराबर रूप में पिस रहे हैं। यह भी सच है कि अन्य राज्यों से यहाँ आकर बसी आबादी का एक हिस्सा समूचे पंजाबियों को ही अपना विरोधी समझ लेता है। उनकी यह सोच उन्हें पंजाबी मज़दूर आबादी से एकता बनाने में रुकावट खड़ी करती है। आपस में लड़ते रहना मज़दूर एकता को कमजोर बनाता है और उनके असली दुश्मन पूँजीपतियों और उनकी सत्ता को मज़बूत बनाता है। असल में, पंजाब के हों या अन्य राज्यों से आकर यहाँ बसे मज़दूर हों – समस्याएँ सबकी एक हैं। वे एक ही लुटेरे का शिकार हैं, जिसका एक ही हित है कि मज़दूर आपस में विरोध-भाव बनाये रखें और कभी उसकी तरफ़ निशाना न साध पायें। इसलिए सभी मज़दूरों का आपस में कन्धे से कन्धा मिलाकर पूँजीपतियों और उनकी सत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष ही उनकी सभी समस्याओं से मुक्ति का रास्ता है।

● **लखविन्दर**

सजती दिल्ली उजड़ती दिल्ली

(पेज 3 से आगे)

हक़ व सुविधाओं से वंचित और अनजान है। ज़िन्दगी की कठिनाई और परेशानियाँ यदि उनके गुस्से को भड़काती भी हैं तो उनपर छींटा मारने का काम वहाँ गहराई से पैठे एनजीओ (गैर सरकारी संगठन) के लोग करते हैं। और स्थानीय दलाल व छुटभैय्ये नेता उन्हें उकसाकर या बहला-फुसलाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। कुछ मामलों में बिल्ली के भाग से कभी-कभी छींका फूट भी जाता है लेकिन ज़्यादातर इन्हें नाउम्मीदी ही नसीब होती है।

आज ज़रूरत इस बात को समझने की है कि बस्तियों में रिहाइश और पुनर्वास का हक़, बुनियादी सुविधाओं को पाने का हक़ एक जनतान्त्रिक अधिकार है। मुनाफ़े के लिए काम करने वाली इस व्यवस्था में विकास की सारी परियोजनाएँ मुट्ठी भर धन्नासेठों को ध्यान में रखकर बनायी जाती है और इस सरकार के लिए मेहनत-मशक्कत करने वाले लोगों, झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले लोगों की कोई अहमियत नहीं है। एकजुटता और संघर्ष के बदौलत ही वे अपना हक़ हासिल कर सकते हैं। दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

● **रूपेश**

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

अब इण्टरनेट पर भी उपलब्ध है। इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक और राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं। वेबसाइट का पता :
http://sites.google.com/site/bigulakhbar

'बिगुल' के ब्लॉग पर भी आप इसकी सामग्री पा सकते हैं और अपने विचार एवं सुझाव भेज सकते हैं। ब्लॉग का पता :
http://bigulakhbar.blogspot.com

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006**
फ़ोन : 0522-2335237

सम्पादकीय उपकार्यालय : **जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ**

दिल्ली सम्पर्क : **बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर दिल्ली-94**

ईमेल : **bigul@rediffmail.com**

मूल्य : एक प्रति-रु. 3/- वार्षिक-रु. 40.00 (डाक ख़र्च सहित)

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'बिगुल' मज़दूरों का अपना अखबार है। यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए बिगुल कार्यालय को लिखिए।

बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है:
● डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 ● जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे) ● जाफ़रा बाज़ार, गोरखपुर-273001 ● जनचेतना सचल स्टाल, चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

कॉमनवेल्थ गेम्स के लिए सजती दिल्ली में उजड़ती ग़रीबों की बस्तियाँ

पिछले एक दिसम्बर को बादली रेलवे स्टेशन से सटी बस्ती, सूरज पार्क की लगभग एक हज़ार झुग्गियों को दिल्ली नगर निगम ने ढहा दिया। सैकड़ों परिवार एक झटके में उजड़ गये और दर-दर की ठोकरें खाने के लिए सड़कों पर ढकेल दिये गये। दरअसल 2010 में होने वाले राष्ट्रमण्डल (कॉमनवेल्थ) खेलों की तैयारी के लिए दिल्ली के जिस बदनुमा चेहरे को चमकाने की मुहिम चलायी जा रही है उसकी असलियत खोलने का काम ये झुग्गियाँ कर रही थीं। दिल्ली का चेहरा चमकाने का यह काम भी इन्हीं और ऐसी ही दूसरी झुग्गियों में बसनेवालों के श्रम की बदौलत हो रहा है, लेकिन उनके लिए दिल्ली में जगह नहीं है।

उस दिन सुबह से ही बैरिकेडिंग कर सूरज पार्क इलाक़े की नाकाबन्दी कर दी गयी। भारी संख्या में दिल्ली पुलिस तथा केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस के जवान वहाँ पहुँचने लगे और पूरी झुग्गी बस्ती में उन्होंने दहशत का माहौल बनाना शुरू कर दिया। नगर निगम के अधिकारी भी लोगों को कोई मोहलत देने को तैयार नहीं थे और इस बात की धमकी दे रहे थे कि यदि उन्होंने झुग्गियों से अपना सामान नहीं हटाया तो उनके मालअसबाब समेत झुग्गियों पर बुलडोज़र चढ़ा दिया जायेगा। लोगों में काफ़ी गुस्सा था लेकिन किसी एकजुटता के अभाव में वे कुछ नहीं कर पाये और सुबह लगभग दस बजे बुलडोज़रों ने तबाही मचानी शुरू कर दी। देखते ही देखते हज़ारों परिवारों की बरसों की मेहनत से तिनका-तिनका जोड़कर खड़े की गयी झुग्गियों को मलबे में तब्दील कर दिया गया। आलम यह था कि वहाँ लोगों के बर्तन-भाण्डे इधर-उधर बिखरे पड़े थे, बच्चे भूख-प्यास से बिलख रहे थे। बहुतों के पास तो कोई ठौर-ठिकाना भी नहीं था, जाते भी कहाँ। सरकार ने उनके पुनर्वास की कोई व्यवस्था तक नहीं की है। जबकि पुनर्वास की ज़िम्मेदारी सरकार की है।

इसके पहले 16 नवम्बर को सूरज पार्क के झुग्गीवासियों को पुलिस वालों ने यह सूचना दी थी कि 18 नवम्बर को झुग्गियाँ तोड़ी जायेंगी और कि सभी लोग जल्दी से जल्दी अपनी झुग्गियाँ ख़ाली कर दें। लोगों में अफरा-तफरी मच गयी। स्थानीय दल्लों और छुटभैय्या नेताओं ने इस मौक़े का जमकर फ़ायदा उठाया। दिखावटी शोशेबाज़ी की। लोगों को गाड़ियों में ठूँसकर शीला दीक्षित के दरबार में हाज़िर किया, उनके साथ फ़ोटो खिंचवाये और इस प्रकार कुछ दिनों की मोहलत हासिल कर ली। इस दरमियान सूरजपार्क के इन लोगों को राहत देने के नाम पर तगड़ी वसूली की गयी। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के कार्यकर्त्ताओं ने झुग्गीवासियों को इन दलाल स्वयंभू नेताओं से आगाह किया, उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि बिना लड़े कुछ हासिल नहीं होगा, कि पुनर्वास उनका अधिकार है और उन्हें इस माँग के लिए लामबन्द होना पड़ेगा, कि एकजुट होकर ही इस अन्याय का मुक़ाबला किया जा सकता है। लेकिन जनता की मानसिकता तात्कालिक राहत की होती है और उनका पलड़ा उन दलालों के पक्ष में झुक गया जो उन्हें लगातार भरमाने की कोशिशों में लगे हुए थे। वे लोगों को बता रहे थे कि एक महीने तक झुग्गियों को तोड़ा नहीं जायेगा। लेकिन 30 नवम्बर को पुलिस वालों ने फिर आकर लोगों को यह बताया कि 2 दिसम्बर को झुग्गियाँ तोड़ दी जायेंगी। नगर निगम और प्रशासन जनता से इस क़दर डरा हुआ था कि उसने 1 दिसम्बर को ही झुग्गियों पर बुलडोजर चढ़ा दिया। शाम तक एक हज़ार झुग्गियाँ ढहायी जा चुकी थीं।

इसके बाद सबसे कारगर तरीक़ा यही हो सकता था कि लोगों में इसके चलते जो गुस्सा उबल रहा था उसे एक सही दिशा दी जाये। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के कार्यकर्ताओं ने यही किया भी। उन्होंने 2 दिसम्बर की सुबह इस पूरे प्रकरण पर, स्थानीय दलालों की भूमिका के बारे में, पूरे हालात पर संजीदगी से सोचने के बारे में और पुनर्वास के हक़ के लिए दूसरी झुग्गियों से उजड़े लोगों के साथ मिलकर संघर्ष करने के बारे में विस्तार से बातचीत शुरू की तथा इस सम्बन्ध में एक पर्चा बाँटा। लेकिन लोगों की नासमझी और गुस्से का एक बार फिर स्थानीय दल्लों ने अपने हित में इस्तेमाल कर लिया। इनके उकसावे में आकर लोगों की भीड़ ने पुलिस पर पथराव किया और दिल्ली-अमृतसर रेल मार्ग को जाम कर दिया। जैसा कि होना था आनन-फानन में केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस तथा दिल्ली पुलिस के जवान लोगों पर टूट पड़े। लाठी चार्ज, आँसू गैस के गोले, हवाई-फ़ायर, और गिरफ़्तारी! थोड़ी देर में भीड़ तितर-बितर हो गयी। दल्ले नेता पहले ही नौ दो ग्यारह हो चुके थे।

सूरज पार्क की झुग्गियों में रहने वाले लोग पिछले लगभग पच्चीस वर्षों से यहाँ रह रहे थे। यहाँ सभी लोगों के पास अपना राशन कार्ड, मतदाता पहचान-पत्र आदि होने के बावजूद दिल्ली नगर निगम इन्हें अनधिकृत मानता है। पिछले साल चुनावों से पहले दिल्ली नगर निगम की ओर से यहाँ कुछ झुग्गियों का सर्वेक्षण करवाया गया था और झुग्गियों के भविष्य में तोड़े जाने की सूचना दी गयी थी लेकिन साथ ही यहाँ के बाशिन्दों को यह भी आश्वासन दिया गया था कि झुग्गियाँ तोड़ने के पहले उनका पुनर्वास किया जायेगा। दिल्ली विकास प्राधिकरण (डीडीए) की ओर से 'राजीव रत्न आवास योजना' के अन्तर्गत दिल्ली के निम्न आय वर्ग के लाखों लोगों से फ़्लैट देने के नाम पर सौ-सौ रुपये का फ़ार्म भी भरवाया गया था। सूरज पार्क के भी हज़ारों लोगों ने ये फ़ार्म भरे थे। लेकिन किसी को भी यह जानकारी नहीं है कि फ़्लैट कब और कहाँ मिलेगा। लोगों ने उस समय शीला दीक्षित से गुहार भी लगायी थी पर उस समय तक वे तीसरी बार मुख्यमन्त्री की कुर्सी कब्जिया चुकी थीं लिहाजा उनके कानों पर तो वैसे भी जूँ नहीं रेंगनी थी।

दिल्ली को साफ़-सुथरा बनाने के नाम पर सरकारी अमला पहले भी ग़रीबों की झुग्गियाँ उजाड़ता रहा है। और अब तो दिल्ली को झुग्गी-झोपड़ी से मुक्त करने का सरकार का 'मास्टर प्लान 2021' भी आ चुका है। राष्ट्रमण्डल खेलों के आयोजन से पहले कई फ़्लाईओवर तथा अण्डरपास बनने वाले हैं, पाँच सितारा होटलों, अपार्टमेण्टों, मल्टीप्लेक्सों, मॉलों की पूरी शृंखला तैयार होनी है, मेट्रो का जाल दूरस्थ इलाकों तक बिछाया जाना है। ज़ाहिर है इसके लिए ढेरों झुग्गियाँ-झोपड़ियाँ उजाड़ी जायेंगी तथा वहाँ रहने वाले हज़ारों परिवार दर-दर की ठोकरें खाने को सड़कों पर ढकेल दिये जायेंगे।

इन झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाली आबादी सिर पर छत के बावजूद एक नारकीय ज़िन्दगी जीती है तथा बुनियादी

(पेज 2 पर जारी)

मालिकों के मुनाफ़े की हवस का शिकार – एक और मज़दूर!

रंजीत भी मालिकों के मुनाफ़े की भेंट चढ़ गया

समस्तीपुर से काम की तलाश में दिल्ली आया रंजीत पिछले छह सालों से झिलमिल औद्योगिक क्षेत्र के बी-46 वी.के. कम्पनी में मशीन ऑपरेटर का काम कर रहा था। इस कम्पनी में कॉपर वायर बनाने का काम होता है। यहाँ 100 से ज़्यादा मज़दूर काम करते हैं जिसमें स्थायी मज़दूरों की संख्या बहुत थोड़ी है। स्थायी मज़दूरों को छोड़ अन्य किसी भी मज़दूर को ई.एस.आई, पी.एफ़, जॉबकार्ड से लेकर न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं मिलती है जिसके लिए वे क़ानूनी रूप से अधिकृत हैं। अन्य कारख़ानों की तरह यहाँ भी श्रम-क़ानूनों की सरेआम धज्जियाँ उड़ती हैं। कम्पनी में मज़दूरों से ज़बरदस्ती 12-14 घण्टे काम लिया जाता है, मशीन चलाने वालों से हेल्पर का काम भी लिया जाता है। जो मज़दूर थोड़ी भी आवाज़ उठाता है उसे कम्पनी बाहर का रास्ता दिखा देती है। कहीं कोई सुनवाई नहीं होती। श्रम विभाग व स्थानीय पुलिस तो वैसे भी मालिकों की चाकरी करते है और मज़दूरों पर भौंकते हैं इसलिए कम्पनी मालिक वी.के. मित्तल अन्य सभी मालिकों की तरह पूरी तौर पर आश्वस्त है।

फ़ैक्ट्री में सुरक्षा उपायों पर, ज़ाहिर है, कोई ध्यान नहीं दिया जाता। जंग लगी पुरानी मशीनों और अन्य उपकरणों की सालों से कोई मरम्मत नहीं हुई है। कई बार शिक़ायत करने के बावजूद सुपरवाइज़र से लेकर कम्पनी प्रबन्धन तक सब चिकने घड़े बने रहते थे। मालिकों की नज़र में मज़दूरों की जान की वैसे भी कोई क़ीमत नहीं होती। जब तक वे जाँगर खटाते हैं, ज़िन्दगी चलती रहती है, फिर वे चाहे मरे या जियें मालिकों को इससे क्या, भले ही उनकी जान मालिकों के लिए मुनाफ़ा कमाने में ही क्यों न चली जाये। इसी मुनाफ़े के चलते रंजीत को भी अपनी जान गँवानी पड़ी।

घटना वाले दिन रंजीत तथा तीन अन्य मज़दूरों को सुपरवाइज़र ने ज़बरदस्ती तार के बण्डलों के लोडिंग-अनलोडिंग के काम पर लगा दिया। उन चारों ने क्रेन की हालत देखकर सुपरवाइज़र को पहले ही चेताया था कि क्रेन की हुक व ज़ंजीर बुरी तरह घिस चुके हैं जिससे कभी भी कोई अनहोनी घटना घट सकती है इसके बावजूद उन्हें काम करने के लिए मजबूर किया गया। ऐसे में वही हुआ जिसकी आशंका थी। चार टन का तारों का बण्डल रंजीत पर आ गिरा जिससे उसकी मौक़े पर ही मौत हो गयी। रंजीत की मौत कोई हादसा नहीं एक ठण्डी हत्या है।

अगले दिन पोस्टमार्टम के बाद जब रंजीत का शरीर जी.टी.बी. अस्पताल से अम्बेडकर कैम्प में उसके घर लाया गया तो उसके साथी मज़दूरों व बस्ती के लोगों का गुस्सा फूट पड़ा। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' तथा 'मेहनतकश मज़दूर मोर्चा' के आह्वान पर क़रीब 200 मज़दूर फ़ैक्ट्री गेट पर जुट गये। वे रंजीत के परिवार के लिए मुआवज़े की माँग कर रहे थे। मज़दूरों ने मिल मालिक के खिलाफ़ एफ़. आई. आर. भी दर्ज करायी थी और वे क़ानूनी कार्रवाई की माँग पर डटे हुए थे।

बस्ती की एकजुटता और उग्र तेवर देखकर कम्पनी प्रबन्धन ने पुलिस को बुला लिया। पुलिस ने पहले तो पुलिसिया अन्दाज़ दिखाने की कोशिश की। लेकिन मज़दूरों की फ़ौलादी एकजुटता देखकर वे क़ायदा-क़ानून की दुहाई देने लगे। क्षेत्र के एस.एच.ओ ने वहाँ पहुँचकर मज़दूरों को क़ानूनी तरीक़े से लड़ने की नसीहत दी तथा मज़दूर प्रतिनिधियों की मालिक से वार्ता करायी। लेकिन मालिक अड़ा रहा और एफ़. आई. आर. हटाने पर ही मुआवज़ा देने की शर्त रखी। उस दिन बातों का कोई नतीजा नहीं निकला और रंजीत के दाह संस्कार के लिए उसके घर और बस्ती के लोग तथा मज़दूर वापस आ गये। अगले दिन कम्पनी प्रबन्धन ने रंजीत के परिवारवालों को बुलाकर 20-25 हज़ार रुपये मुआवज़े के नाम पर थमा दिये। वह उनका मुँह बन्द करना चाहता था या फिर यही क़ीमत आँकी थी उसने रंजीत की जान की।

इसी बीच बिगुल मज़दूर दस्ता ने रंजीत और उसके परिवार की हक़ और इंसाफ़ की लड़ाई संगठित करने के लिए बस्ती में एक परचा बाँटा जिसमें निम्न माँगें रखी गयीं :

1. रंजीत के परिवार को उचित मुआवज़ा दिया जाए। 2. परिवार के लिए पेंशन व ई. एस.आई. की सुविधा मुहैया करायी जाए। 3. फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टर को तुरन्त निलम्बित कर सख़्त क़ानूनी कार्रवाई की जाए। 4. इस पूरे मामले की उच्चस्तरीय जाँच हो तथा मालिक व कम्पनी प्रबन्धन पर ग़ैर इरादतन हत्या का केस तत्काल दर्ज किया जाये।

रंजीत की मौत अपने पीछे कई सवाल छोड़ जाती है। यदि मज़दूर यूँ ही गुलामों की तरह सिर झुकाये खटते रहेंगे, मालिकों के हर अन्याय और जुल्म को चुपचाप सहन करते रहेंगे तो वे इसी तरह मारे जायेंगे। उन्हें यह याद रखना होगा –

अगर हम नहीं लड़ते,
अगर हम लड़ते नहीं जाते,
तो दुश्मन अपनी संगीनों से
हमें ख़त्म कर देगा,
और फिर हमारी हड्डियों की ओर
इशारा करते हुए कहेगा,
देखो, ये गुलामों की हड्डियाँ हैं,
गुलामों की!

● गौरव

संसदीय "वामपंथियों" के राज में हज़ारों चाय बाग़ान मज़दूर भुखमरी की क़गार पर

बिगुल संवाददाता

पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जिले में स्थित नावेड़ा नड्डी चाय बाग़ान के 1000 मज़दूरों और उनके परिवार के सदस्यों सहित क़रीब 6,500 लोग भुखमरी की कगार पर हैं। यह चाय बागान दुनिया की सबसे दूसरी बड़ी चाय कम्पनी टाटा टेटली का है। यह चाय बाग़ान उस राज्य, पश्चिम बंगाल, में है जहाँ खुद को मज़दूरों की हितैषी बताने वाली मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का शासन है। मज़दूरों की यह हालत उन अमानवीय स्थितयों का विरोध करने के कारण हुई है जिनमें वे काम करने और जीने को मजबूर हैं।

मौजूदा स्थिति की शुरुआत 10 अगस्त की घटना से हुई। उस दिन मज़दूरों ने, एक 22 वर्षीय स्त्री मज़दूर को 8 माह का गर्भ होने पर भी मातृत्व अवकाश न दिए जाने और उसे चाय की पत्तियाँ चुनने का काम जारी रखने के लिए मजबूर करने के विरोध में प्रदर्शन किया था; जिसके बाद कम्पनी ने बग़ान पर ताला लटका दिया। दरअसल, 9 अगस्त को एक गर्भवती स्त्री मज़दूर आरती, काम करते-करते बाग़ान में बेहोश होकर गिर गयी थी। वहाँ के चिकित्सा अधिकारी द्वारा उनके लिए एम्बुलेंस न भेजने पर उन्हें ट्रैक्टर के पीछे एक रेहड़ी लगाकर, उस पर लिटाया गया और वहाँ से अस्पताल ले जाया गया। वहाँ भी उनका उपचार नहीं किया गया जिस पर मज़दूरों ने विरोध किया तब कहीं जाकर उनको मामूली प्राथमिक उपचार प्रदान किया गया। वहाँ पर्याप्त इलाज न होने पर उन्हें उसी ट्रैक्टर से सरकारी अस्पताल ले जाया गया, जो वहां से क़रीब 1 घण्टे की दूरी पर है।

घटना की ख़बर फैलते ही क़रीब 500 मज़दूरों ने, जिनमें से अधिकांश स्त्रियां थीं, चिकित्सा परिसर का घेराव किया और उक्त चिकित्सा अधिकारी के ख़िलाफ़ कार्रवाई की मांग की। उस समय तो स्थानीय प्रबंधन ने मज़दूरों से मिलकर बात करने का आश्वासन दिया, लेकिन 11 अगस्त को चिकित्सा अधिकारी सहित प्रबंधन बागान से चला गया और तालाबन्दी की घोषणा कर दी।

धरने पर बैठी स्त्री मज़दूर

इसके बाद 27 अगस्त को, बेहद कम मज़दूरों का प्रतिनिधित्व करने वाली तीन ट्रेड यूनियनों के साथ प्रबंधन ने बाग़ान को खोलने का समझौता किया। इस समझौते के तहत, तालाबन्दी के दौरान सभी मज़दूरों की दिहाड़ी पर रोक लगा दी गयी। इसमें समझौते में यह भी जोड़ा गया कि एक ''आंतरिक जांच'' की जाएगी। यह समझौता अंग्रेजी में लिखा गया था, जिसे बाग़ान मज़दूर नहीं समझते।

अगले दिन चाय बाग़ान खोल दिया गया, लेकिन मज़दूरों को बाग़ान दोबारा चालू करने की शर्तें नहीं बतायी गयीं। 8 सितम्बर को, प्रबन्धन ने आठ मज़दूरों के निलम्बन और घरेलू जांच के पत्र जारी किये। आठों में से एक भी मज़दूर को इसकी सूचना के लिए पत्र नहीं दिया गया। इन आठों मज़दूरों में से किसी मज़दूर ने हिंसा या गैर-क़ानूनी व्यवहार नहीं किया था। इन्हें इसलिए निशाना बनाया गया क्योंकि वे बाग़ान मज़दूरों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक करते रहे हैं।

10 सितम्बर की एक बैठक में, प्रबन्धन ने मज़दूरों को बताया कि ये निलंबन पत्र 27 अगस्त के समझौते के अनुसार जारी किये गये हैं और बाग़ान को इसी शर्त पर खोला गया है कि इस समझौते का अनुपालन हो। दूसरे शब्दों में - इसका मतलब यह हुआ कि निलम्बन को स्वीकार करो या दोबारा तालाबंदी के लिए तैयार रहो। मज़दूरों ने इस चेतावनी का जवाब देने के लिए 6 दिन का समय माँगा। लेकिन प्रबंधन ने 4 दिन बाद ही, दोबारा तालाबन्दी कर दी। क्योंकि उस दिन मज़दूरों को दो महीने की तनख्वाह के बराबर बोनस मिलना था। अगस्त से लेकर तालाबन्दी तक मज़दूरों को केवल दो दिन का वेतन मिला था।

उसके बाद से मज़दूरों ने कई बार प्रबंधन ने बाग़ान चालू करने का अनुरोध किया, लेकिन प्रबंधन ने यह कहते हुए ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया कि बाग़ान तब तक चालू नहीं होगा तब तक कि सभी मज़दूर 10 सितम्बर के अल्टीमेटम को स्वीकार करते हुए दुर्व्यवहार का विरोध करने के अपने अधिकार को छोड़ेंगे नहीं।

टाटा टेटली प्रबंधन की इस मनमानी के चलते नावेड़ा नड्डी चाय बाग़ान के मज़दूरों और उनके परिवारों सहित 6500 लोग भूखो मरने की हालत में हैं। वैसे भी, तालाबन्दी नहीं होने पर भी चाय बाग़ान के मज़दूरों को 62.50 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती है। इस मामूली सी मज़दूरी में मज़दूर आमतौर पर बेहद दयनीय स्थिति में रहते हैं। इस पर तालाबन्दी ने उनकी हालत और खराब कर दी है।

उधर, टाटा चाय की वर्ष 2009 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, टाटा टी के प्रबंध निदेशक को प्रतिदिन नावेड़ा नड्डी के मजदूरों से लगभग 1000 गुना ज्यादा के हिसाब से तनख्वाह मिलती है। नावेड़ा नड्डी चाय बाग़ान का स्वामित्व 'अमलगमेटेड प्लांटेशन प्राइवेट लिमिटेड' के पास है, जिसका आधा मालिकाना टाटा टी कम्पनी के पास है। इस बाग़ान से तैयार हुई चाय टाटा टेटली के नाम से बाजार में आती है।

अब नावेड़ा नड्डी चाय बाग़ान के मज़दूरों ने एक संघर्ष समिति बनाई है जिसने तुरंत बाग़ान को चालू करने, निलंबन को वापस लेने और मज़दूरों पर कोई इलज़ाम न लगाने, 14 सितम्बर की बीती तिथि से मज़दूरी और राशन देने, हर वर्ष त्यौहारों पर देय बोनस का भुगतान करने और प्रबंधन द्वारा श्रीमती आरती से माफी मांगने की मांग की है।

इस पूरे मामले में राज्य में काबिज माकपा की यूनियन सीटू ने हमेशा की तरह मज़दूरों से दगाबाज़ी का रुख अपनाया है। उसले विरोध-प्रदर्शन की घटना की निंदा करते हुए कंपनी द्वारा मज़दूरों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई को जायज़ ठहराया है। कंपनी के साथ मज़दूर-विरोधी समझौता करने में भी सीटू और हिंद मज़दूर सभा की यूनियन ही आगे रही थी।

एम.आर. डाइंग (ताजपुर रोड, लुधियाना) हादसा

लुधियाना के कारख़ाना मालिकों का खूँखार चेहरा फिर उजागर

16 नवम्बर को लुधियाना के ताजपुर रोड पर स्थित गीता नगर की गली नम्बर 5 में एम.आर. डाइंग में रंगाई मशीन के फटने के हादसे ने एक बार फिर लुधियाना के कारख़ाना मालिकों का खूँखार चेहरा सामने ला दिया है। इस हादसे ने एक बार फिर मज़दूरों के सामने मालिक-पुलिस-प्रशासन-श्रम विभाग की मिलीभगत का पर्दाफाश किया। कारख़ाना मालिक और पुलिस के बयानों के अनुसार इस हादसे में दो मज़दूर मारे गये और 4 घायल हुए।

लुधियाना के कारख़ाना मालिकों द्वारा मज़दूरों की जान की ज़रा भी परवाह न करते हुए सुरक्षा इन्तज़ामों को पूरी तरह नज़रअन्दाज़ किया जा रहा है। मुनाफ़े की हवस में मालिक मज़दूरों को सिर्फ़ मशीन के पुर्जे समझते हैं या फिर जानवर! वे लाखों रुपये अपनी अय्याशी पर तो उड़ा देंगे, लेकिन ख़तरनाक मशीनों पर काम करने वाले मज़दूरों की सुरक्षा के लिए एक पैसा भी ख़र्च करने को तैयार नहीं होते। वे अधिक से अधिक उत्पादन लेने के लिए मशीनों की ओवरलोडिंग करते हैं। ख़राब मशीनों पर भी मज़दूरों से काम कराते रहते हैं। ज़्यादा-और-ज़्यादा उत्पादन के लिए मज़दूरों पर हद से ज़्यादा दबाव डालते हैं। यही कारण है कि लुधियाना में मज़दूर कभी ब्यॉलर फटने, कभी रंगाई की मशीनों के फटने, कभी मशीनों में लिपटने, कभी गैस सिलैण्डर फटने आदि के शिकार होते रहते हैं, मरते रहते हैं, अपाहिज होते रहते हैं।

असल में लुधियाना के कारख़ानों में मालिकों का जंगलराज खुलेआम चल रहा है। कारख़ाना मालिकों द्वारा श्रम क़ानूनों की खुलकर धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं। लुधियाना के लगभग सभी कारख़ानों के मज़दूरों के हक़-अधिकारों पर कारख़ाना मालिकों द्वारा डाका डाला जा रहा है। न कहीं आठ घण्टे की दिहाड़ी का क़ानून लागू होता है, न न्यूनतम वेतन दिया जाता है, ज़बरदस्ती ओवरटाइम लगवाया जाता है। कारख़ानों में वहाँ काम कर रहे अधिकतर मज़दूरों का कोई रिकॉर्ड नहीं रखा जाता। कारख़ाने में काम करते हुए अगर किसी मज़दूर के साथ कोई हादसा हो जाये या उसकी जान ही चली जाये तो वह या उसका परिवार कोई मुआवज़ा माँगने के क़ानूनी तौर पर हक़दार नहीं रह जाते।

कारख़ानों में होने वाले हादसों के बाद अकसर मज़दूरों की लाशें ग़ायब कर दी जाती हैं और पुलिस-प्रशासन को खिला-पिलाकर मामले को रफा-दफा कर दिया जाता है। लुधियाना के एम.आर. डाइंग कारख़ाने में रंगाई की मशीन फटने की दुर्घटना भी यही दर्दनाक कहानी बयाँ करती है।

एम.आर. डाइंग का मालिक हादसे के बाद एक भी ऐसा दस्तावेज़ पेश नहीं कर पाया, जिससे पता चलता हो कि कारख़ाने में कितने मज़दूर काम करते थे, कितनों का ई.एस.आई. कटता था, कितनों के पहचानपत्र बने थे, जो मज़दूर वहाँ काम करते थे, उनका स्थाई पता क्या था, मज़दूरों को वे कितना वेतन देता था। हादसे के बाद लोग इस कारख़ाने में काम करने वाले अपने सगे-सम्बन्धियों को ढूँढ़ने वहाँ आये, लेकिन अधिकतर का कुछ पता नहीं चल रहा था। मालिक ग़लतबयानी कर रहा है कि कारख़ाने में सिर्फ़ 25 मज़दूर ही काम करते थे, जबकि एक मज़दूर के मुताबिक़ इसमें कम से कम पौने दो सौ मज़दूर काम करते थे।

पुलिस और मालिक की मिलीभगत के बिना यह सारी धाँधली सम्भव ही नहीं। इस मामले में पुलिस की मिलीभगत दिन के उजाले की तरह साफ़ थी। मालिक द्वारा जिन मज़दूरों के मारे जाने की बात मानी भी गयी, उनकी लाशें भी पुलिस ने जाली रिश्तेदारों को सौंप दी। कारख़ाने में कुल कितने मज़दूर काम करते थे, इसकी जाँच करने की पुलिस ने कोई कोशिश नहीं की। बल्कि इस मसले को तो पूरी तरह रफ़ा-दफ़ा करने की कोशिश की गयी।

हादसा सुबह 9 बजे हुआ। लेकिन मालिक ने गेट नहीं खोला। ज़ोरदार धमाके की आवाज़ सुनकर इलाक़े के मज़दूर बड़ी संख्या में गेट पर जमा हो चुके थे। जब काफ़ी देर तक गेट नहीं खोला गया, तो मज़दूरों ने गेट तोड़ना शुरू कर दिया। मज़दूरों ने काफ़ी मशक्कत के बाद गेट खुलवाया। क्या होता रहा इतनी देर कारख़ाने के अन्दर? ऐसी कौन सी बात थी, जो आम जनता से छिपाने की कोशिश की जा रही थी? पुलिस ने इस बारे में जाँच क्यों नहीं की? ये चीज़ें मालिकों और पुलिस की मिलीभगत, पुलिस की सन्दिग्ध भूमिका के बारे में काफ़ी कुछ खुद-ब-खुद बयान कर रही हैं।

सरकार का श्रम विभाग इतने खुले रूप में मालिकों की सेवा कर रहा है कि इस हादसे के बाद लेबर दफ़्तर का कोई भी अधिकारी नहीं पहुँचा। इंस्पेक्टर कारख़ानों में आकर कभी सुरक्षा इन्तज़ामों की जाँच-पड़ताल नहीं करते। वे कभी मज़दूरों को उनके हक़- अधिकारों के बारे में नहीं बताते, न ही उनसे पूछते हैं कि उन्हें कारख़ाने में क्या-क्या वेतन-भत्ते आदि प्राप्त हो रहे हैं। वे तो सीधे जाते हैं बाबू के दफ़्तर और अपनी जेब गर्म करके लौट जाते हैं।

मालिकों के डाकू-गिरोह, जिन्हें वे तरह-तरह की एसोसिएशनों के नाम पर चला रहे हैं, मज़दूरों को लूटने, उनसे अधिक से अधिक मुनाफ़ा निचोड़ने, मज़दूरों द्वारा अपने हक़ की आवाज़ बुलन्द करने पर उनके दमन की साज़िशें रचने के सिवा और कुछ नहीं हैं। कारख़ानों के मालिकों के गिरोह मज़दूरों पर संगठित हमला बोल रहे हैं। लेकिन उनके मुक़ाबले मज़दूर कहाँ हैं? मज़दूरों में अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता न होना, अपने हक़ लेने के लिए एकताबद्ध और संगठित न होने के चलते ही आज मज़दूरों की यह स्थिति हो गयी है कि वे खुलेआम कारख़ाना मालिकों की मुनाफ़े की हवस का शिकार हो रहे हैं।

कारख़ाने में मज़दूरों की सुरक्षा के पुख्ता इन्तज़ामों सहित सभी श्रम क़ानूनों के लिए मज़दूरों को एकताबद्ध होना होगा। जब तक मज़दूर एकजुट नहीं होंगे, ये मुनाफ़ाखोर मज़दूरों को ऐसे ही अपने मुनाफ़े की हवस का शिकार बनाते रहेंगे। व्यापक मज़दूर जनता की फौलादी एकता ही मज़दूरों की ज़िन्दगियों के साथ खिलवाड़ करने वाले इन मुनाफ़ाखोर लुटेरों से उसकी रक्षा कर सकती है। मज़दूरों की संगठित ताक़त ही कारख़ाना मालिकों-पुलिस-प्रशासन और सरकार के मज़दूर विरोधी गठबन्धन का मुँहतोड़ जवाब दे सकती है।

● **लखविन्दर**

यह महँगाई ग़रीबों के जीने के अधिकार पर हमला है!

(पेज 1 से आगे)

जैसे देशों में ग़रीबों की आमदनी बढ़ने के कारण खाद्यान्न की माँग बढ़ने से महँगाई बढ़ रही है। तबके वित्त मन्त्री चिदम्बरम ने भी तोते की तरह यही तर्क दोहराया था। अब यही दलील फिर से दी जा रही है। यह अपनेआप में कितना अमानवीय तर्क है कि महँगाई इसलिए बढ़ गयी है क्योंकि ग़रीब अब भरपेट खाने लगे हैं। वैसे तो यह बात ही सिरे से गलत है। विश्व खाद्य संगठन के मुताबिक़ देश के 22 करोड़ से ज़्यादा लोगों को दो जून खाना नहीं मिलता। कई अर्थशास्त्रियों के मुताबिक़ वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा है। उनका मानना है कि देश की एक तिहाई आबादी को भरपेट खाना नहीं मिलता। भूख के पैमाने पर दुनिया के 119 देशों की सूची में भारत 94वें स्थान पर है, और भूखे लोगों की कुल संख्या के हिसाब से पहले स्थान पर। जो लोग किसी तरह पेट भर भी लेते हैं उनमें भी ज़्यादातर को ज़रूरी पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता जिसके कारण देश में पचास प्रतिशत से ज़्यादा महिलाएँ और बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। औसत भारतीय को उपलब्ध कुल अनाज लगातार कम होता जा रहा है। 1980 के दशक में देश में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की खपत 178 किलोग्राम थी जो कि 1990 के दशक से घटते-घटते 2006 में सिर्फ़ 156 किलो प्रति व्यक्ति रह गयी थी।

अगर इस बात को ध्यान में रखें कि इसी दौर में देश के 10-15 प्रतिशत ऊपरी तबक़े की आय में बेतहाशा बढ़ोत्तरी के साथ खासकर मध्यवर्गों द्वारा खाद्यान्न की खपत और बर्बादी तेज़ी से बढ़ी है, तो समझा जा सकता है कि ग़रीबों द्वारा अनाज की वास्तविक खपत में किस क़दर कमी आयी है।

आय बढ़ने से खाद्यान्न की खपत बढ़ने के तर्क के बेहूदेपन को समझना हो तो दिल्ली, नोएडा, गाज़ियाबाद, गुड़गाँव आदि के किसी भी मज़दूर इलाके में जाकर देखा जा सकता है। एक ओर बेरोज़गारी का फ़ायदा उठाकर और मन्दी का बहाना बनाकर कारख़ानेदार मज़दूरों को कम से कम पैसे देकर निचोड़ लेने पर आमादा हैं, दूसरी ओर खाने-पीने की चीज़ों के साथ ही कमरों के किराये और बस भाड़े आदि में हुई बढ़ोत्तरी ने काम करने वाले मज़दूरों के सामने भी पेट भरने का संकट पैदा कर दिया है। पिछले कुछ महीनों में सभी मज़दूर इलाक़ों में कमरों के किराये बढ़ गये हैं। दिल्ली में बसों के किराये ड्योढ़े से दोगुने तक बढ़ गये हैं। दूसरी ओर, मज़दूरी में पिछले कई साल में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई है, बल्कि कई इलाकों में मज़दूरी कम हो गयी है। स्त्री मज़दूरों, पीस रेट पर काम करने वालों आदि की मज़दूरी में कई जगह भारी कमी आयी है। ऐसे में यह दलील ग़रीबों के साथ एक गन्दे मज़ाक जैसी लगती है। मन्दी के कारण मज़दूरों की एक अच्छी-ख़ासी आबादी को अक्सर काम छूट जाने और बेरोज़गारी का सामना करना कर पड़ रहा है।

अगर कुछ ग़रीबों की आमदनी में थोड़ी-बहुत बढ़ोत्तरी हुई भी है, तो खाद्य पदार्थों की भीषण महँगाई के कारण वे फिर से पुरानी हालत में पहुँच गये हैं। यानी एक हाथ से सरकार ने अगर उनकी जेब में कुछ पैसे डाले तो दूसरे हाथ से उसे निकालने का इन्तज़ाम भी कर दिया है।

वैसे तो ग़रीबी की रेखा का पैमाना ही बेहद नीचे है, लेकिन हाल में आई सुरेश तेन्दुलकर रिपोर्ट के मुताबिक़ एक तिहाई से ज़्यादा लोग इस ग़रीबी रेखा से भी नीचे हैं। बिहार की 54 प्रतिशत और उड़ीसा की 60 प्रतिशत जनसंख्या ग़रीबी रेखा से नीचे है। पिछले डेढ़ साल से जारी महँगाई के चलते करोड़ों लोग फिर से ग़रीबी रेखा के नीचे चले गये हैं। इसलिए यह महँगाई आम महँगाई से अलग है क्योंकि इसकी सबसे अधिक मार सबसे ग़रीब और मेहनतकश लोगों पर पड़ रही है।

यूपीए सरकार वादा करती रही है कि वह भोजन के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा देने के लिए कानून बनायेगी। लेकिन असलियत यह है कि बढ़ती क़ीमतों के ज़रिये करोड़ों ग़रीब भोजन के अधिकार से वंचित किये जा रहे हैं। भूलना नहीं चाहिए कि सरकार की ही एक कमेटी अपनी रिपोर्ट में बता चुकी है कि देश की 77 प्रतिशत आबादी रोज़ाना बीस रुपये से भी कम पर गुज़ारा करती है। यह आबादी किस तरह पेट भर रही होगी, यह सोचकर भी सिहरन होती है।

ग़रीबों तक सस्ता अनाज पहुँचाने के लिए बनी सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भ्रष्टाचार के बावजूद थोड़ा बहुत अनाज आदि नीचे तक पहुँच जाता था, पर उदारीकरण के दौर में उसे धीरे-धीरे ध्वस्त किया जा चुका है। पूँजीपतियों को हज़ारों करोड़ की सब्सिडी लुटाने वाली सरकार ग़रीबों को भुखमरी से बचाने के लिए दी जाने वाली खाद्य सब्सिडी में लगातार कटौती कर रही है। इस महँगाई ने यह भी साफ़ कर दिया है कि जनता की खाद्य सुरक्षा की गारण्टी करना सरकार अब अपनी ज़िम्मेदारी मानती ही नहीं है। लोगों को बाज़ार की अन्धी शक्तियों के आगे छोड़ दिया गया है। यानी, अगर आप अपनी मेहनत, अपना हुनर, अपना शरीर या अपनी आत्मा बेचकर बाज़ार से भोजन ख़रीदने लायक़ पैसे कमा सकते हों, तो खाइये, वरना भूख से मर जाइये!

जैसा कि कुछ विश्लेषक कह रहे हैं; लगातार जारी यह महँगाई एक बड़े ख़तरे की पूर्व-सूचना हो सकती है। अर्थव्यवस्था पर आने वाले हर बड़े संकट की गाज अन्ततः ग़रीबों पर ही गिरती है। लेकिन देश की ग़रीब जनता चुपचाप इस संकट को बर्दाश्त नहीं करती रहेगी। मेहनतकशों की भारी आबादी में सुलगता असन्तोष जगह-जगह फूट रहा है। देश के हुक्मरान महँगाई पर क़ाबू पाने के लिए भले ही कुछ न कर रहे हों, ग़रीबों के सम्भावित विस्फ़ोटों को रोकने के लिए वे अपने दमन तन्त्र को चाक-चौबन्द करने में जुट गये हैं। मेहनतकशों को भी इस लुटेरी और ग़रीबों की दुश्मन हुकूमत से लड़ने के लिए संगठित और जुझारू आन्दोलन की तैयारी में जुट जाना होगा।

लिब्रहान रिपोर्ट : जिसके तवे पर सबकी रोटियाँ सिंक रही हैं

(पेज 1 से आगे)

मस्जिद के सवाल पर देशभर में साम्प्रदायिक उन्माद का माहौल पैदा किया और 6 दिसम्बर 1992 को उसके कार्यकर्ताओं ने मस्जिद का विध्वंस किया। लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में निकली रथयात्रा ने पूरे देश में साम्प्रदायिक जुनून फैलाया और जिधर से यह यात्र गुज़री, अपने पीछे दंगों में जले घरों, लाशों और ख़ून का सिलसिला छोड़ती गयी । बाबरी मस्जिद ढहाये जाने को "कलंक" बताने वाले अटलबिहारी वाजपेयी का 5 दिसम्बर का भाषण सुनकर कोई मूर्ख भी समझ सकता है कि किस चतुराई से वे कार्यकर्ताओं को मस्जिद ढहाने के लिए उकसा रहे थे। मस्जिद गिराये जाते समय आडवाणी और जोशी समेत भाजपा के बड़े नेता कुछ ही दूरी पर एक मंच से खड़े तमाशा देख रहे थे और उमा भारती लाउडस्पीकर पर "एक धक्का और दो" के नारे लगा रही थीं। मस्जिद के तीनो गुम्बद गिरते ही उमा भारती ने मुरली मनोहर जोशी को गले लगाकर बधाई भी दी। ये सबकुछ देश की जनता ने देखा है और यह भी देखा है कि कितनी मक्कारी से भाजपा नेता कभी इस घटना को अपने "जीवन का सबसे दुखद दिन" बताते रहे तो कभी इसे "जनभावनाओं का प्रकटीकरण" कहते रहे।

लेकिन देश की जनता यह भी जानती है कि धर्म की राजनीति का यह गन्दा खेल कांग्रेस भी शुरू से ही खेलती रही है। उस समय केन्द्र की कांग्रेस सरकार की मिलीभगत के बिना 6 दिसम्बर की घटना नहीं हो सकती थी। 17 वर्षों के दौरान 48 बार समय बढ़ाने के बाद जिस तरह से लिब्रहान आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी और जिस तरह उसे लीक कराया गया उससे इस पूरे मसले पर अनावश्यक विवाद पैदा करके रिपोर्ट के निष्कर्षों पर ही लोगों में शंका पैदा कर दी गयी। खासकर, युवा पीढ़ी के एक बड़े हिस्से में, जो उस दौर की घटनाओं से अच्छी तरह वाकिफ़ नहीं हैं, रिपोर्ट को लेकर पहले ही शंका पैदा हो गयी।

रिपोर्ट के बाद पेश की गयी सरकार की ऐक्शन टेकन रिपोर्ट यानी कार्रवाई रपट ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। इस कार्रवाई रपट में सरकार ने एक साम्प्रदायिक हिंसा विधेयक पेश करने की बात तो कही, लेकिन मस्जिद ढहाने और साम्प्रदायिक नफ़रत फैलाने के दोषी आडवाणी, जोशी, कल्याण सिंह, उमा भारती सहित संघ और भाजपा के नेताओं के खिलाफ़ कार्रवाई करने का इसमें ज़िक्र भी नहीं है। इस ख़तरनाक साज़िश में हिन्दू फ़ासिस्ट संगठनों का साथ देने वाले पुलिस और प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ़ भी किसी कार्रवाई की बात नहीं कही गयी है।

वैसे भी शायद ही किसी को यह उम्मीद होगी कि लिब्रहान आयोग की रिपोर्ट से साम्प्रदायिक शक्तियों पर कोई चोट की जा सकती है। मुम्बई दंगों के बाद गठित श्रीकृष्ण आयोग की रिपोर्ट का हश्र लोग देख चुके हैं। उस रिपोर्ट में जिन राजनेताओं और अफसरों को सबूत सहित दोषी ठहराया गया था, उनमें से किसी के भी ख़िलाफ़ कार्रवाई नहीं हुई। लिब्रहान आयोग तो रिपोर्ट आने से पहले ही मज़ाक का पात्र बन चुका था। फिर भी, कुछ लोगों को इस रिपोर्ट और इस पर कार्रवाई की सरकारी सिफ़ारिशों से निराशा हुई।

दरअसल, जो लोग संसद, आयोगों और अदालतों के ज़रिये साम्प्रदायिक ताक़तों से लड़ने की खुशफ़हमी पालेंगे उन्हें निराशा ही हाथ लगेगी। देश में आज तक एक भी बड़े साम्प्रदायिक दंगे के अपराधियों को सज़ा नहीं हुई है। चन्द एक लोगों को अगर सजाएँ हो भी जायें तो इससे फ़ासिस्टों के जुनूनी अभियान पर कोई अंकुश नहीं लगेगा। फ़ासिस्टों को दुनिया में हर जगह मेहनतकशों की एकता के फौलादी झाड़ू ने ही ठिकाने लगाया है। हिन्दुस्तान में भी साम्प्रदायिक फ़ासिस्टों की नफ़रत की राजनीति को तभी शिकस्त दी जा सकती है जब व्यापक मेहनतकश अवाम के बीच सघन राजनीतिक-सांस्कृतिक प्रचार करके इनका भण्डाफोड़ किया जाये और जनता को वर्गीय आधार पर जुझारू एकजुटता की डोर में बाँधा जाये।

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूंजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

– भगतसिंह (साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज)

बोलते आँकड़े चीख़ती सच्चाइयाँ

- भारत के लगभग आधे बच्चे कुपोषण के शिकार हैं!
- दुनिया के कुल कुपोषित बच्चों में एक तिहाई संख्या भारतीय बच्चों की है।
- देश में हर तीन सेकंड में एक बच्चे की मौत हो जाती है।
- देश में प्रतिदिन लगभग 10,000 बच्चों की मौत होती है, इसमें लगभग 3000 मौतें कुपोषण के कारण होती हैं।
- सिर्फ अतिसार के कारण ही प्रतिदिन 1000 बच्चें की मौत हो जाती है।

भारत के पाँच वर्ष से कम उम्र के 38 फीसदी बच्चों की लम्बाई सामान्य से बहुत कम है।

- 15 फीसदी बच्चे अपनी लम्बाई के लिहाज से बहुत दुबले हैं।
- 43 फीसदी (लगभग आधे) बच्चों का वजन सामान्य से बहुत कम है।
- हर 1000 में से 57 बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं।
- भारत में प्रति वर्ष 74 लाख कम वजन वाले बच्चे पैदा होते हैं – जो कि दुनिया में सबसे अधिक है।
- विश्व भर में 97 लाख बच्चे पाँच साल की उम्र पूरी करने से पहले ही मर जाते हैं, इनमें 21 लाख (यानी लगभग 21 प्रतिशत) बच्चे भारत के हैं।
- हर 4 में से 1 लड़की और हर 10 में से 1 लड़का प्राथमिक शिक्षा से वंचित है.
- गर्भ या प्रसव के दौरान आधी महिलाओं को उचित देख-भाल नहीं मिलती।
- देश की 50 प्रतिशत महिलाओं और 80 प्रतिशत बच्चों में खून की कमी है।
- देश का हर चौथा आदमी भूखे पेट रहता है। दुनिया भर में भूखे रहने वालों का एक तिहाई हिस्सा भारत में रहता है।
- पिछले 4-5 सालों में अधिकतर खाद्य पदार्थों की कीमतों में 50 से 100 प्रतिशत का इजाफा हो चुका है।
- 77 प्रतिशत भारतीय 20 रुपये रोज से कम पर गुजारा करते हैं।
- देश की केन्द्र सरकार अपने खर्च का महज 2 प्रतिशत स्वास्थ्य पर और 2 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करती है। इसकी तुलना में सुरक्षा पर 15 प्रतिशत खर्च किया जाता है।
- संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून के अनुसार दुनिया में अब लगभग 1 अरब से अधिक लोग भुखमरी का शिकार हैं।

भोपाल गैस त्रासदी की पच्चीसवीं बरसी (3 दिसम्बर) पर

शान्ति काल में पूँजी के हाथों हुए सबसे बड़े हत्याकाण्ड का नाम है भोपाल

मुनाफ़े की हवस में भागती पूँजी की रक्तपिपासु राक्षसी की प्यास इंसानी ज़िन्दगियों को हड़पे बिना शान्त नहीं होती। पूँजीवाद का पूरा इतिहास बर्बर हत्याकाण्डों और नृशंस जनसंहारों से भरा हुआ है। मुनाफ़े के बँटवारे के लिए लड़े जाने वाले युद्धों के दौरान वह हिरोशिमा और नागासाकी जैसे हत्याकाण्ड रचता है और शान्ति के दिनों में भोपाल जैसे जनसंहारों को अंजाम देता है। कम से कम बीस हज़ार लोगों को मौत के घाट उतारने और क़रीब छह लाख लोगों को अन्धेपन से लेकर दमा जैसी बीमारियों का शिकार बनाने वाली इस घटना को दुनिया की सबसे बड़ी औद्योगिक दुर्घटना कहा जाता है, लेकिन वास्तव में यह दुर्घटना नहीं थी। इस हादसे ने एक बार फिर बस यही साबित किया कि पूँजीपतियों के लिए इंसानों की ज़िन्दगी मुनाफ़े से बढ़कर नहीं होती। एक ओर मुनाफ़े के लिए बेहद ज़हरीली गैसें तैयार की जाती हैं और दूसरी ओर पैसे बचाने के लिए सुरक्षा के सारे इंतज़ाम ताक पर धर दिये जाते हैं।

भोपाल में भी यही हुआ था। 2 दिसम्बर 1984 की रात को अमेरिकी कम्पनी यूनियन कार्बाइड की भारतीय सब्सिडियरी यूसीआईएल की भोपाल स्थित कीटनाशक फ़ैक्ट्री से निकली चालीस टन ज़हरीली गैसों ने हज़ारों सोये हुए लोगों को मौत के घाट उतार दिया था।

दो और तीन दिसम्बर की रात करीब साढ़े ग्यारह बजे कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूरों ने एक विशाल टैंक से रिस रही गैस के कारण आँखों में जलन की शिकायत करनी शुरू की। क़रीब साढ़े बारह बजे खतरे का अलार्म बजाया गया और पानी का छिड़काव शुरू किया गया। शहर में किसी को कोई खबर नहीं थी। फैक्ट्री के चारों ओर बसी मेहनतकश लोगों की बस्तियों में दिनभर की मेहनत से थके लोग सो रहे थे। सुबह क़रीब तीन बजे भीषण विस्फोट के साथ टैंक फट गया और 40,000 किलो ज़हरीली गैसों के बादलों ने भोपाल शहर के 36 वार्डों को ढँक लिया। इनमें सबसे अधिक मात्रा में थी दुनिया की सबसे ज़हरीली गैसों में से एक मिथाइल आइसोसाइनेट यानी एमआईसी गैस। कुछ ही देर में सोये हुए लोग गिरते-पड़ते घरों से निकलने लगे। गैस का असर इतना तेज़ था कि चन्द पलों के भीतर ही सैकड़ों लोगों की दम घुटने से मौत हो गयी, हज़ारों अन्धे हो गये, बहुत सी महिलाओं का गर्भपात हो गया, हज़ारों लोग फेफड़े, लीवर, गुर्दे, या मस्तिष्क काम करना बन्द कर देने के कारण मर गये या अधमरे से हो गये। बच्चों, बीमारों और बूढ़ों को तो घर से निकलने तक का मौका नहीं मिला। हज़ारों लोग महीनों बाद तक तिल-तिल कर मरते रहे और करीब छह लाख लोग आज तक विकलांगता और बीमारियों से जूझ रहे हैं। यह गैस इतनी ज़हरीली थी कि पचासों वर्ग किलोमीटर के दायरे में मवेशी और पक्षी तक मर गये और ज़मीन और पानी तक में इसका ज़हर फैल गया। जो उस रात मौत से बच गये वे पच्चीस बरस बीत जाने के बाद भी आज तक तरह-तरह की बीमारियों से जूझ रहे हैं। इस ज़हर के असर से कई-कई वर्ष बाद तक उस पूरे इलाके में पैदा होने वाले बच्चे जन्म से ही विकलांग या बीमारियों से ग्रस्त होते रहे। आज भी वहाँ की ज़मीन और पानी से इस ज़हर का असर ख़त्म नहीं हुआ है। कई अध्ययनों ने साबित किया है कि माँओं के दूध तक में यह ज़हर घुल चुका है।

●

पूँजी के इस हत्याकाण्ड के बाद एक आज़ाद देश की सरकारों ने अपने ही नागरिकों के साथ जो सलूक किया वह इससे कम बर्बर और अमानवीय नहीं है। पिछले पच्चीस वर्ष से भोपाल गैस पीड़ितों के साथ एक घिनौना मज़ाक जारी है। इसमें सब शामिल रहे हैं – केन्द्र और राज्य की कांग्रेस और भाजपा सरकारें, सुप्रीम कोर्ट से लेकर निचली अदालतों तक पूरी न्यायपालिका और स्थानीय नौकरशाही।

आज तक इस हत्याकाण्ड के मामले में एक भी व्यक्ति को सज़ा नहीं हुई है। यूनियन कार्बाइड कम्पनी के प्रमुख वॉरेन एण्डरसन को भारत आते ही गिरफ़्तार कर लिया गया था, लेकिन छह घण्टे में ही उसकी न सिर्फ़ ज़मानत हो गयी बल्कि राज्य सरकार के विशेष विमान से उसे दिल्ली ले जाया गया जहाँ से वह उसी दिन अमेरिका रवाना हो गया। उसके बाद उसे भारत लाने के भारत सरकार के तमाम तथाकथित प्रयास बेकार साबित हुए। सरकार ने यूनियन कार्बाइड और अमेरिका के सामने घुटने टेकते हुए अपने देश के लाखों गैस पीड़ितों के हितों का बेशर्मी के साथ सौदा कर लिया। अमेरिकी अदालतों में यूनियन कार्बाइड बार-बार उसे ठेंगा दिखाती रही और अमेरिका का उसे पूरा समर्थन मिलता रहा।

भारत की अदालतें भी इससे कुछ कम नहीं साबित हुईं। लम्बी क़ानूनी नौटंकी के बाद 1989 में सुप्रीम कोर्ट ने यूनियन कार्बाइड पर कुल 47 करोड़ डॉलर का जुर्माना किया। (उस वक़्त के मूल्य से यह रकम 713 करोड़ रुपये हुई।) शायद यह पहली बार हुआ होगा कि किसी अपराधी पर जुर्माना उसकी मर्ज़ी से किया गया। जुर्माने की यह रकम इस सरकारी आँकड़े पर आधारित थी कि गैस हादसे में कुल 3000 लोग मारे गये और 1,05,000 लोग घायल या बीमार हुए। सरकार के इस आँकड़े का कोई भी आधार नहीं है क्योंकि आज तक उस दुर्घटना से प्रभावित होने वाले लोगों की वास्तविक संख्या जानने के लिए किसी सरकार ने कोई सर्वेक्षण कराया ही नहीं। विभिन्न एजेंसियों और संगठनों के अनुमानों और गैस पीड़ितों द्वारा खुद अदालत में पेश किये गये साक्ष्यों के आधार पर माना जाता है कि मृतकों और गैस पीड़ितों की वास्तविक संख्या क्रमशः 20,000 और 5,75,000 है। जुर्माने की इस मामूली सी रकम में से 113 करोड़ रुपये मवेशियों और मकानों को हुए नुकसान के लिए देने के बाद बचे 600 करोड़ रुपये पौने छह लाख गैस पीड़ितों में बाँटे गये जिन्हें बरसों के इंतज़ार के बाद औसतन प्रति व्यक्ति 12,410 रुपये मिले। जले पर नमक रगड़ने की इस कार्रवाई के विरोध में गैस पीड़ित जब दोबारा सुप्रीम कोर्ट के पास गये तो उन्हें राज्य सरकार के पास भेज दिया गया। राज्य सरकार के कल्याण आयुक्त ने अधिक मुआवज़ा देने का उनका दावा खारिज कर दिया। इसके बाद भी गैस पीड़ित मुआवज़े के लिए लम्बी लड़ाई लड़ते रहे। और अब हादसे की पच्चीसवीं बरसी से ठीक तीन दिन पहले 30 नवम्बर 2009 को मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने भी उनकी अपील खारिज कर दी।

देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सेवा में बिछी जा रही सरकारों से इसके अलावा और उम्मीद भी क्या की जा सकती है। भोपाल में मरने और विकलांग होने वाले लोगों का एक दोष यह भी था कि उनमें से ज़्यादातर मेहनतकश और ग़रीब तबके के लोग थे। इस व्यवस्था में उनकी जान की क़ीमत यूँ भी कुछ नहीं होती। कुछ हज़ार ग़रीबों के लिए भला कोई पूँजीवादी सरकार अपने देशी-विदेशी आकाओं की नाराज़गी क्यों मोल लेगी। किसी विराट मल्टीनेशनल कम्पनी के अफ़सर को गिरफ़्तार करके या उस पर मुआवज़ा ठोंककर वह देश में पूँजी निवेश का माहौल भला क्यों ख़राब करेगी? वैसे तो यूनियन कार्बाइड कम्पनी के अलावा भारत सरकार को भी गैस पीड़ितों को उचित मुआवज़ा देना चाहिए था क्योंकि इस हादसे के लिए वह भी उतनी ही ज़िम्मेदार है। लेकिन पूँजीपतियों को मन्दी से बचाने के लिए अरबों रुपये का बेलआउट पैकेज देने वाली सरकार के पास अपने ग़रीब नागरिकों की उजड़ी हुई ज़िन्दगी बहाल करने के लिए चन्द करोड़ रुपये भी नहीं हैं।

हादसे के शिकार लोगों के प्रति सरकारी उपेक्षा का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि इतने सालों के दौरान आज तक उनके इलाज की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की गयी है। ज़हरीली गैसों के असर पर आज तक न तो कोई चिकित्सकीय शोध कराया गया और न ही उसके कारण हुई बीमारियों का कोई उचित इलाज सुनिश्चित किया गया। भोपाल के विभिन्न अस्पतालों में आज भी रोज़ाना करीब 6000 गैस पीड़ित इलाज के पहुँचते हैं। ज़्यादातर डॉक्टर लक्षणों के आधार पर उनका कामचलाऊ इलाज करते रहते हैं।

अब भी जारी लापरवाही का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यूनियन कार्बाइड के परिसर में 2 दिसम्बर, 1984 से आज तक 44,000 किलो लिसलिसा कचरा और 25,000 किलो अल्फा नेप्थॉल खुले में पड़ा हुआ है। कई अध्ययन बता चुके हैं कि इससे आसपास के बड़े इलाके की ज़मीन और भूजल में ज़हर घुल रहा है लेकिन सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी है। कारख़ाने के इर्द-गिर्द के इलाकों में बसी अनेक बस्तियों में आज भी पेयजल की पाइप द्वारा आपूर्ति की व्यवस्था नहीं है और लोग दूषित भूजल ही पीने के काम में लाते हैं।

भोपाल हादसे को पच्चीस बरस हो गये मगर इस बीच अनेक छोटे-छोटे भोपाल देशभर में होते रहे हैं। उद्योगीकरण की अन्धाधुन्ध दौड़ में आज भी आये दिन छोटी-बड़ी दुर्घटनाओं में मज़दूरों और आम लोगों की मौत होती रहती है, जिनमें से कुछ अख़बारों की सुर्ख़ियाँ बनती हैं, मगर बहुतों की तो ख़बर तक नहीं हो पाती। भोपाल हादसे की पच्चीसवीं बरसी ने एक बार फिर पूँजी के नरभक्षी चरित्र की याद दिलाने का काम किया है। हमें यह नहीं भूलना होगा कि जब तक पूँजीवाद रहेगा, भोपाल और चेर्नोबिल जैसे हादसे होते रहेंगे।

– शिवार्थ

तथ्य गवाह हैं कि यह हादसा नहीं, मुनाफ़े की दौड़ में इंसानों की बलि थी...

अमेरिकी कंपनी यूनियन कार्बाइड औद्योगिक गैसों से लेकर विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों का उत्पादन करती थी। 1954 में इसने 'सेवन' नामक एक रसायन का उत्पादन शुरू किया जिसको तैयार करने के दौरान एम.आई.सी. नामक एक गैस पैदा होती है। एम.आई.सी. आज तक बनायी गयी सबसे जहरीली रासायनिक गैसों में से एक है। यह वही कुख्यात गैस है जिससे प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हज़ारों सैनिकों को चंद मिनटों के भीतर मौत की नींद सुला दिया गया था। यू.सी.सी. के वैज्ञानिकों द्वारा जब इसका परीक्षण चूहों एवं अन्य जानवरों पर किया गया तो उसके नतीजे इतने खतरनाक थे कि कंपनी ने इस शोध को प्रकाशित ही नहीं होने दिया। वैज्ञानिकों के अनुसार सुरक्षा इंतजाम में किसी भी तरह की चूक से, इसके लीक होने की सूरत में एक अत्यंत भयंकर विस्फोट को नहीं टाला जा सकता था। इसे लीक होने से बचाने के लिए एकमात्र उपाय था कि इसे 5 डिग्री या उससे कम तापमान पर रखा जाए। लेकिन **भोपाल संयंत्र में गैस टैंक का तापमान कम रखने के लिये लगाया गया रेफ्रिजरेशन प्लाण्ट जून 1984 से ही बन्द पड़ा था। टैंक का वाल्व भी काफ़ी समय से ख़राब था।**

दुर्घटना की आशंका के कारण इस तरह के उत्पादन करने वाली फैक्ट्रियाँ ज़्यादातर अमीर देशों द्वारा तीसरी दुनिया के देशों में स्थापित की जाती हैं, और तैयार उत्पाद को निर्यात करा लिया जाता है। यू.सी.सी. ने भी भारत में अपना काम आज़ादी से पहले ही शुरू कर दिया था। 1966 में भारत सरकार और यू.सी.सी. के बीच हुए एक समझौते के अनुसार 'सेवन' रसायन के 5000 टन उत्पादन के लिए भोपाल के काल मैदान में एक फैक्ट्री लगानी थी। इस उत्पादन में से 1200 टन अमेरिका को निर्यात होना था। यू.सी.सी. ने अपने इस कार्यक्रम को सफल बनाने की जिम्मेदारी एदुआर्दो मुनोज़ नामक एक अर्जेण्टीनी इंजीनियर को सौंपी। एदुआर्दो ने तुरंत इस बात पर आपत्ति ज़ाहिर की कि 5000 टन सेविन के उत्पादन के लिए भारी मात्रा में एम. आई.सी. गैस का भण्डारण करना पड़ेगा जो अत्यंत खतरनाक साबित हो सकता था। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि भण्डारण के बजाए जरूरत के मुताबिक गैस का उत्पादन किया जाए। यह थोड़ा महँगा होगा, लेकिन इससे ख़तरा कम हो जायेगा। उनका प्रस्ताव अमेरिकी औद्योगिक नीति के ख़िलाफ़ था, और इसलिए उन्हें यह कहकर चुप करा दिया गया कि 'आपको फ़िक्र करने की जरूरत नहीं है, हमारी भोपाल इकाई बिल्कुल चॉकलेट फैक्ट्री जैसी सुरक्षित रहेगी। एदुआर्दो ने फैक्ट्री के लिए चुनी गयी जगह पर भी आपत्ति ज़ाहिर की, क्योंकि यह रिहायशी इलाके के बीच में थी। यह अपील भी ठुकरा दी गई।

नगरनिगम योजना के मानकों के अंतर्गत भी फैक्ट्री के लिए प्रस्तावित जगह रद्द कर दी जानी चाहिए थी, लेकिन मध्यप्रदेश सरकार ने यू.सी.सी. का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 1979 तक फैक्ट्री ने काम भी शुरू कर दिया गया, लेकिन काम शुरू होते ही कई दुर्घटनाएँ हुई। दिसंबर 1981, में ही गैस लीक होने के कारण एक मज़दूर की मौत हो गई और दो बुरी तरह घायल हो गए। लगातार हो रही दुर्घटनाओं के मद्देनज़र मई, 1982 में तीन अमेरिकी इंजीनियरों की एक टीम फैक्ट्री का निरीक्षण करने के लिए बुलाई गई। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में साफ़ कहा कि मशीनों का काफ़ी हिस्सा खराब है, एवं गैस भण्डारण की सुविधा अत्यंत दयनीय है जिससे कभी भी गैस लीक हो सकती है और भारी दुर्घटना संभव है। इस रिपोर्ट के आधार पर 1982 में भोपाल के कई अखबारों ने लिखा था कि 'वह दिन दूर नहीं, जब भोपाल में कोई त्रासदी घटित हो जाए।' फिर भी न तो कम्पनी ने कोई कार्रवाई की और न ही सरकार ने।

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें? (छठी किश्त)

• अभिनव

फ़ासीवाद का मुक़ाबला कैसे करें?

इटली, जर्मनी और भारत में फ़ासीवाद के पैदा होने से लेकर उसके विकास तक का ऐतिहासिक विश्लेषण करने के बाद हमने फ़ासीवादी उभार के प्रमुख सामान्य ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों को समझा। एक सामान्य निष्कर्ष के तौर पर यह बात हमारे विश्लेषण से सामने आयी कि **पूँजीवादी व्यवस्था का संकट क्रान्तिकारी और प्रतिक्रियावादी, दोनों ही सम्भावनाओं को जन्म देता है।** अगर किसी समाज में क्रान्तिकारी सम्भावना को मूर्त रूप देने के लिए एक अनुभवी और विवेक-सम्पन्न कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पार्टी मौजूद नहीं है, और फ़ासीवादी शक्तियों ने समाज के पोर-पोर में अपनी पैठ बना ली है, तो प्रतिक्रियावादी सम्भावना के हक़ीकत में बदल सकती है। जर्मनी और इटली में यही हुआ था और एक दूसरे क़िस्म से भारत में भी भगवा फ़ासीवादी उभार के पीछे एक बड़ा कारण किसी क्रान्तिकारी नेतृत्व का ग़ैर-मौजूद होना भी था। इस बात को हम पहले ही विस्तार में समझ चुके हैं। **दूसरी बात,** जो हमने समझी वह यह थी कि मज़दूर आन्दोलन में सामाजिक-जनवादियों और संशोधनवादियों की ग़द्दारी एक बड़ा कारण थी जिसने एक रोके जा सकने वाले फ़ासीवादी उभार को न रोके जा सकने वाले फ़ासीवादी उभार में तब्दील कर दिया। ज़ाहिर है कि यह दूसरा कारण पहले कारण से नज़दीकी से जुड़ा हुआ है। मज़दूर आन्दोलन का नेतृत्व पूँजीवादी संकट की स्थिति में अगर क्रान्तिकारी विकल्प मुहैया नहीं कराता है और पूरे आन्दोलन को सुधारवाद, पैबन्दसाज़ी, अर्थवाद, अराजकता- वादी संघाधिपत्यवाद और ट्रेड-यूनियनवाद की अन्धी गलियों में घुमाता रहेगा तो निश्चित रूप से अपनी गति से पूँजीवाद अपनी सबसे प्रतिक्रियावादी तानाशाही की ओर ही बढ़ेगा। बल्कि कहना चाहिए एक संगठित और मज़बूत, लेकिन अर्थवादी, सुधारवादी और ट्रेड-यूनियनवादी मज़दूर आन्दोलन पूँजीवाद को संकट की घड़ी में और तेज़ी से फ़ासीवाद की ओर ले जाता है (जर्मनी और इटली में फ़ासीवादी उभार के विश्लेषण वाले हिस्से को देखें)। **तीसरी बात :** यह सच है कि फ़ासीवाद अन्त में और वास्तव में बड़ी पूँजी के हितों की सेवा करता है, लेकिन ऐसा नहीं है कि इसका सामाजिक आधार महज़ बड़ा पूँजीपति वर्ग होता है। बड़े पूँजीपति वर्ग को मज़दूर आन्दोलन के दबाव को तोड़ने के लिए एक ऐसी ताक़त की ज़रूरत होती है जिसका व्यापक सामाजिक आधार हो। फ़ासीवाद के रूप में उसे वह ताक़त मिलती है। पूँजीवादी संकट बड़े पैमाने पर शहरी और ग्रामीण निम्न पूँजीपति वर्ग और मध्यम वर्गों को उजाड़कर असुरक्षा और अनिश्चितता की स्थिति में पहुँचा देता है। दिशाहीन शहरी बेरोज़गार युवा आबादी, शहरी और ग्रामीण निम्न पूँजीपति वर्ग के बीच में फ़ासीवादी ताक़तें अपना प्रचार करती हैं और उनकी निगाहों में किसी अल्पसंख्यक समुदाय को और संगठित मज़दूर आन्दोलन को निशाना बनाती हैं। असुरक्षा और अनिश्चितता से चिड़चिड़ाये और बिलबिलाये टटपुँजिया वर्ग में प्रतिक्रिया की ज़मीन पहले से तैयार होती है और वह फ़ासीवादी प्रचार का शिकार बन जाता है। फ़ासीवाद ग्रामीण और शहरी मध्य वर्गों, निम्न पूँजीपति वर्गों और लम्पट सर्वहारा वर्ग के जीवन की दिशाहीनता, हताशा, लक्ष्यहीनता और सांस्कृतिक पिछड़ेपन का फ़ायदा उठाते हुए उनके बीच लम्बी तैयारी के साथ प्रतिक्रिया की ज़मीन तैयार करता है। इसी प्रक्रिया का नतीजा होता है एक फ़ासीवादी आन्दोलन का पैदा होना, जिसके सामाजिक अवलम्ब के तौर पर ये वर्ग होते हैं। फ़ासीवाद की विजय या उसके सत्ता में आने के साथ ही ये वर्ग इस सच्चाई से वाक़िफ़ हो जाते हैं कि फ़ासीवाद वास्तव में बड़ी पूँजी का सबसे निर्मम और बर्बर चाकर है और उससे दूर भी होने लगते हैं। लेकिन यह तो बाद की बात है। प्रभावी क्रान्तिकारी प्रचार और पार्टी के अभाव में फ़ासीवाद उभार की ज़मीन भी इन्हीं वर्गों के बीच तैयार होती है।

चौथी बात जो हमने नतीजे के रूप में समझी, वह यह थी कि जिन देशों में पूँजीवाद किसी क्रान्ति के ज़रिये सत्ता में नहीं आया, वहाँ पूरी अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति में ग़ैर-जनवादी और निरंकुश प्रवृत्तियों का बोलबाला होता है। यहाँ तक कि भावी समाजवादी क्रान्ति के मित्र वर्गों में भी इन प्रवृत्तियों ने जड़ जमा रखी होती है। रैडिकल भूमि सुधार के अभाव में गाँव में युंकरों और नये धनी किसानों का एक पूरा वर्ग होता है जो फ़ासीवाद के लिए एक मज़बूत सामाजिक आधार का काम करता है। मँझोले किसानों का एक बड़ा हिस्सा भी क्रान्तिकारी प्रचार, आन्दोलन और संगठन के अभाव में फ़ासीवादी प्रचार में बह जाता है। पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति के अभाव में शहरी मध्यवर्गों में भी जनवादी विचारों और प्रथाओं का भारी अभाव होता है। यह मध्यवर्ग उस यूरोपीय मध्यवर्ग के समान नहीं है जिसमें तार्किकता, वैज्ञानिकता और गतिमानता कूट-कूट कर भरी हुई थी और जो मानवतावाद और जनवाद के सिद्धान्तों का जनक था। आर्थिक तौर पर यह मध्यवर्ग बन चुका है, लेकिन वैचारिक और आत्मिक तौर पर उसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे आधुनिक मध्यवर्ग जैसा कहा जा सके। यही कारण है कि यह शहरी पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग भी फ़ासीवादी प्रचार के समक्ष अरक्षित होता है और उसके प्रभाव में आ जाता है। पूँजीवादी क्रान्ति का अभाव ही था जिसने जर्मनी और इटली को फ़ासीवाद के उदय और विकास की ज़मीन बनाया और फ्रांस को नहीं। यह बेवजह नहीं था कि फ्रांस में फ़ासीवादी समूहों को कभी कोई बड़ी सफलता नहीं मिली।

ये कुछ प्रमुख नतीजे थे जिन पर हम अपने विश्लेषण के ज़रिये पहुँचे थे। अपने इन नतीजों के आधार पर ही हमें यह तय करना होगा कि हमें फ़ासीवाद से किस प्रकार लड़ना है। ज़ाहिर है कि हमें फ़ासीवाद पर विचारधारात्मक और राजनीतिक चोट करनी ही होगी; हमें पूरी फ़ासीवादी विचारधारा के वर्ग मूल और चरित्र को आम जनता के सामने उजागर करना होगा; हमें फ़ासीवादियों की असली जन्मकुण्डली और उनके इतिहास को जनता के समक्ष खोलकर रख देना होगा; हमें उनके भर्ती केन्द्रों पर चोट करनी होगी और उन सभी वर्गों के बीच सघन और व्यापक राजनीतिक प्रचार चलाना होगा जो उनका सामाजिक अवलम्ब बन सकते हैं; हमें मज़दूर आन्दोलन के अन्दर ज़बरदस्त राजनीतिक प्रचार चलाते हुए मज़दूर वर्ग को उसके ऐतिहासिक लक्ष्य और उत्तरदायित्व, यानी, समाजवादी क्रान्ति और कम्युनिज़्म की ओर आगे बढ़ने से, अवगत कराना होगा; इसी प्रक्रिया में हमें मज़दूर वर्ग के भीतर मौजूद वर्ग विजातीय प्रवृत्तियों पर चोट करनी होगी और उसे अर्थवाद, संशोधनवाद और सुधारवाद के गड्ढे में जाने से बचाना होगा; हमें सामाजिक जनवादियों और संशोधनवादियों को पूरी जनता के सामने नंगा करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़नी होगी; हमारा विश्लेषण हमें स्पष्ट तौर पर दिखलाता है कि फ़ासीवाद को एक अप्रतिरोध्य उभार बनाने में अगर किसी एक शक्ति की सबसे अधिक भूमिका थी तो वह संशोधनवाद ही था। भारत में भी इस मामले में कोई अपवाद नहीं है। आज मज़दूर आन्दोलन के भीतर भारतीय मज़दूर संघ सबसे बड़ी ट्रेडयूनियन बन चुका है तो इसकी ज़िम्मेदार एटक, सीटू और एक्टू जैसी अर्थवादियों-सुधारवादियों-ट्रेडयूनियनवादियों और संशोधनवादियों की ग़द्दार यूनियनें ही हैं। इन बातों को हम अच्छी तरह समझते हैं, लेकिन फिर भी कम्युनिस्ट क़तारों और कार्यकर्ताओं के लिए बिन्दुवार कुछ ठोस बातों को समझ लेना बहुत ज़रूरी है। हमारी समझ में ये कुछ चन्द ज़रूरी बातें हैं, जिन पर अमल फ़ासीवाद को शिकस्त देने के हमारे संघर्ष में हमारी भारी मदद कर सकता है।

1) मज़दूर मोर्चे पर जो सबसे अहम कार्यभार कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के सामने है, वह है मज़दूर आन्दोलन और ट्रेडयूनियन आन्दोलन के भीतर संशोधनवाद, ट्रेडयूनियनवाद, अर्थवाद, सुधारवाद और अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद के ख़िलाफ़ फ़ैसलाकुन, समझौताहीन और निर्मम संघर्ष। यही वे भटकाव हैं जो मज़दूर वर्ग को फ़ासीवाद के राक्षस के समक्ष वैचारिक और राजनीतिक तौर पर अरक्षित छोड़ देते हैं। इन भटकावों को मज़दूर आन्दोलन के भीतर घुसाने और पैदा करने का अपराध और ग़द्दारी जिन ताक़तों ने की है, वे हैं इस देश की संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ जो अरसे पहले मार्क्सवाद का दामन छोड़ संशोधनवाद का रास्ता चुन चुकी हैं। मज़दूर वर्ग के बीच भारत की कम्युनिस्ट पार्टी, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लिबरेशन जैसी पार्टियों की ग़द्दारी और उनके दोगलेपन को नंगा कर देना कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए सबसे ज़रूरी काम है। फ़ासीवाद से लड़ने के लिए मज़दूर वर्ग को जिस स्वप्न की ज़रूरत होती है, ये पार्टियाँ उस स्वप्न की हत्या करती हैं। हमें उसी स्वप्न को मज़दूर वर्ग के बीच पुनर्जीवित करना और फैलाना है। इसके बग़ैर हम फ़ासीवाद से लड़ने के लिए मज़दूर वर्ग की जुझारू और लड़ाकू एकता और संगठन खड़े नहीं कर सकते। हमें मज़दूर वर्ग के भीतर अराजनीतिक प्रवृत्तियों का भी ज़बरदस्त विरोध करना चाहिए। अराजनीतिक प्रवृत्तियों में सबसे प्रमुख है अराजकतावाद और अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद जो मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक लक्ष्य के प्रति उसके सचेत होने को भारी नुक़सान पहुँचाता है। ये मज़दूर वर्ग के बीच ग़ैर-पार्टी क्रान्तिवाद और मज़दूर वर्ग के "स्वायत्त" संगठन की सोच को प्रोत्साहित करता है। स्वायत्त का अर्थ है विचारधारात्मक और राजनीतिक रूप से अनाथ! इस स्वायत्तता की लफ्फ़ाजी का पर्दाफ़ाश करना चाहिए और मज़दूर वर्ग में क्रान्तिकारी विचारधारा और पार्टी की ज़रूरत को हर-हमेशा रेखांकित किया जाना चाहिए। ज्ञात हो कि अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी जॉर्ज सोरेल के अधिकांश अनुयायी इटली में फ़ासीवादियों की शरण में चले गये थे। यह अनायास नहीं था।

2) मज़दूर मोर्चे के बाहर भी आम मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग और साथ ही ग्रामीण क्षेत्र की सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा, ग़रीब और मँझोले किसानों की आबादी में भी हमें संशोधनवादी संसदीय वामपन्थी पार्टियों को नंगा करना होगा और बताना होगा कि ये छद्म कम्युनिस्ट हैं और कम्युनिस्ट विचारधारा और मज़दूर वर्ग के साथ ग़द्दारी कर चुके हैं। शहरी और ग्रामीण मध्यवर्ग के हितों की नुमाइन्दगी करने के इनके दावे भी खोखले हैं और वास्तव में इनका लक्ष्य इसी पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा करना है जिसके भीतर आम मध्यवर्ग का भी कोई भविष्य नहीं है और उसकी नियति में बरबाद होकर सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा की क़तारों में शामिल होते जाना ही लिखा है। यह इसलिए भी बेहद ज़रूरी बन जाता है क्योंकि मध्यवर्ग और आम मेहनतकश जनता का एक बड़ा हिस्सा संशोधनवादी नेतृत्व की कारगुज़ारियों को देखकर संसदीय वामपन्थी पार्टियों से तो नफ़रत करता है, वह अज्ञानता में समाजवाद और कम्युनिज़्म के आदर्शों से भी दूर हो जाता है। इसलिए छद्म मार्क्सवादियों को मज़दूर वर्ग में ही नहीं बल्कि भावी समाजवादी क्रान्ति के सभी मित्र वर्गों के सामने नंगा करना बेहद ज़रूरी कार्यभार बन जाता है।

3) सबसे प्रमुख तौर पर मज़दूर वर्ग में, लेकिन साथ ही शहरी और ग्रामीण निम्न पूँजीपति वर्ग, अर्द्धसर्वहारा आबादी, ग़रीब और मँझोले किसानों, खेतिहर मज़दूरों और वेतनभोगी निम्न मध्यवर्ग के बीच क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी को लगातार राजनीतिक प्रचार की कार्रवाइयाँ चलाते हुए यह दिखलाना होगा कि पूँजीवाद एक परजीवी और मरणासन्न व्यवस्था है जो अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाकर अपनी प्रासंगिकता खो चुकी है। अब यह जनता को बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी, भुखमरी, असुरक्षा, अनिश्चितता आदि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दे सकता। यह अपनी जड़ता की ताक़त से टिका हुआ है और इसकी सही जगह इतिहास का कूड़ेदान है। पूँजीवादी समाज और व्यवस्था की रोज़मर्रे की और प्रतीक घटनाओं के ज़रिये लगातार उसे नंगा करना होगा। मज़दूरों, युवाओं, छात्रों, बुद्धिजीवियों और स्त्रियों की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हर सम्भव मौक़े पर पूँजीवाद की ऐतिहासिक व्यर्थता को प्रदर्शित करना होगा। पूँजीवादी संकट के दौर में और पूँजीवादी चुनावों के दौर में इस व्यवस्था और समाज का क्रान्तिकारी विकल्प लेकर ज़ोरदार तरीक़े से आम मेहनतकश जनता के सभी वर्गों में जाना होगा। ये वे वक़्त होते हैं जब जनता राजनीतिकरण के लिए मानसिक तौर पर खुली और तैयार होती है। लेकिन जब ऐसे मौक़े न हों तब भी निरन्तरता के साथ, बिना थके और तात्कालिक परिणामों की आकांक्षा किये बग़ैर पूँजीवाद विरोधी कम्युनिस्ट राजनीतिक प्रचार को जारी रखना होगा, कभी विलम्बित ताल में तो कभी द्रुत ताल में। लेकिन बिना रुके, बिना थके।

4) मज़दूर वर्ग की पार्टी को मज़दूर मोर्चे, छात्र-युवा मोर्चे, बुद्धिजीवी मोर्चे, स्त्री मोर्चे समेत सभी मोर्चों पर उन अतार्किक, अवैज्ञानिक और निरंकुश विचारों के ख़िलाफ़ प्रचार चलाना होगा जिनका इस्तेमाल फ़ासीवादी ताक़तें निम्न पूँजीपति वर्गों, मध्यम वर्गों, लम्पट सर्वहारा, आदि को साथ लेने के लिए करती हैं। मिसाल के तौर पर, नस्लवाद, साम्प्रदायिकतावाद, क्षेत्रवाद, भाषाई कट्टरता, जातीयतावाद, जातिवाद आदि। ये वे विचारधाराएँ हैं जिनका इस्तेमाल कर फ़ासीवादी ताक़तें जन असन्तोष की दिशा को पूँजीवादी व्यवस्था की दिशा में मुड़ने से रोकती हैं और उन्हें किसी अल्पसंख्यक समुदाय या जाति की ओर मोड़ देती हैं और एक निरंकुश प्रतिक्रियावादी और बहुसंख्यावादी राजनीति करते हुए फ़ासीवादी सत्ता क़ायम करती हैं। इन विचारधाराओं का विरोध हमें बुर्जुआ मानवतावाद और धर्मनिरपेक्षता की ज़मीन पर खड़ा होकर नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग की वर्ग चेतना की ज़मीन पर खड़ा होकर करना होगा। बुर्जुआ मानवतावादी अपीलें और धर्मनिरपेक्षता का राग अलापना कभी भी साम्प्रदायिक फ़ासीवाद का मुक़ाबला नहीं कर पाया है और न ही कर पायेगा। सर्वहारा वर्ग चेतना की ज़मीन पर खड़ा होकर किया जाने वाला जुझारू और आक्रामक प्रचार ही इन विचारों के असर को तोड़ सकता है। हमें तमाम आर्थिक और सामाजिक दिक़्क़तों के स्रोत को आम जनता के सामने नंगा करना होगा और साम्प्रदायिक प्रचार के पीछे के असली इरादे पर से सभी नक़ाब नोच डालने होंगे। साथ ही, यह प्रचार करने वाले व्यक्तियों की असलियत को भी हमें जनता के बीच लाना होगा और बताना होगा कि उनका असली मक़सद क्या है। धार्मिक कट्टरपन्थी फ़ासीवाद का मुक़ाबला इसी ज़मीन पर खड़े होकर किया जा सकता है। वर्ग निरपेक्ष धर्म निरपेक्षता और 'मज़हब नहीं सिखाता' जैसी शेरो-शायरी का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

5) फ़ासीवाद के सत्ता में रहने पर या उसके सत्ता में रह चुके होने पर उसकी सच्चाई को जनता के सामने उजागर करना अधिक आसान होता है। भाजपा के नेतृत्व में छह वर्षों तक राजग सरकार के चलने से वे काम हो गये जो सामान्य परिस्थितियों में करने पर किसी क्रान्तिकारी ताक़त को दुगुना वक्त लगता। सत्ता में आते ही फ़ासीवादियों का धनलोलुप, पतित, चरित्रहीन, सत्ता-लोलुप, कुर्सी-प्रेमी, अनैतिक चरित्र सामने आने लगता है और उनके चेहरे पर से धार्मिक पावनता, नैतिकता, और अनुशासन का सारा नकाब चिथड़ा हो जाता है। इस कारक का क्रान्तिकारी ताक़तों को पूरा इस्तेमाल करना चाहिए और जनता के हर हिस्से में फ़ासीवादियों के भ्रष्टाचार, अनैतिकता, पतन और धनलोलुपता को जमकर निशाना बनाना चाहिए और उनका भण्डाफोड़ करना चाहिए। ऐसा प्रचार निरन्तरता के साथ लम्बे समय तक चलाया जाना चाहिए। इससे हम उनकी विश्वसनीयता को प्राणान्तक चोट पहुँचा सकते हैं। यह बेहद ज़रूरी है कि फ़ासीवादियों को जनता के बीच किसी भी रूप में पैर न जमाने दिया जाये। इस मक़सद में यह प्रचार बहुत बड़ी भूमिका निभाएगा।

6) फ़ासीवाद के सामाजिक अवलम्बों में जिन वर्गों को फ़ासीवाद अपनी पेशीय शक्ति के रूप में भ्रष्ट करता है वे हैं आर्थिक और क्षेत्रीय रूप से पूँजीवादी विकास के कारण उजड़े हुए वर्ग। क्रान्तिकारी पार्टी को इन वर्गों को संगठित करने का प्रयास एकदम शुरू से कर देना चाहिए और उनके बीच शुरू से ही पूँजीवाद-विरोधी राजनीतिक प्रचार करना चाहिए। उन्हें पहले क़दम से ही यह दिखलाना होगा कि उनके उजड़ने, उनके जीवन की असुरक्षा और अनिश्चितता और दर-बदर होने के लिए और कोई नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था ज़िम्मेदार है। यह और कुछ कर भी नहीं सकती है। ऐसे वर्गों में लम्पट सर्वहारा वर्ग, असंगठित और अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाला सर्वहारा वर्ग, शहरी निम्न मध्यवर्गीय बेरोज़गार और अर्द्ध-बेरोज़गार, गाँवों में उजड़े हुए या उजड़ते हुए ग़रीब किसान आदि प्रमुख हैं।

7) लेनिन ने बहुत पहले बताया था कि फ़ासीवाद और प्रतिक्रियावाद दस में से नौ बार जातीयतावादी, नस्लवादी, साम्प्रदायिकतावादी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का चोला पहनकर आता है। वैसे तो हमें शुरू से ही बुर्जुआ राष्ट्रवाद के हर संस्करण का पुरज़ोर विरोध करना चाहिए, लेकिन ख़ास तौर पर फ़ासीवादी प्रजाति का सांस्कृतिक अन्धराष्ट्रवाद मज़दूर वर्ग के सबसे बड़े

(पेज 8 जारी)

गोरखपुर में अड़ियल मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष जारी

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर के बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूरों के लगातार जारी संघर्ष के बारे में बिगुल में हम लिखते रहे हैं। पिछले दिनों मज़दूरों ने मालिकों और प्रशासन के दमन के विरुद्ध अपने एकजुट संघर्ष से पूर्वी उत्तर प्रदेश के मज़दूरों के सामने एक मिसाल पेश की और प्रशासन को झुकने पर मजबूर कर दिया। प्रशासन ने **माडर्न लेमिनेटर्स और पैकेजिंग** के मालिक पवन बथवाल को मज़दूरों की माँगों पर समझौता करने का निर्देश दिया लेकिन उसके घनघोर मज़दूर विरोधी रवैये से क्षुब्ध मज़दूरों ने उसके कारखाने से सामूहिक इस्तीफ़ा देने का फ़ैसला कर लिया।

25 अक्टूबर को मजदूरों ने संयुक्त रूप से अपना इस्तीफ़ा डी.एल.सी. को सौंप दिया। मालिकान ने इसे लेने से इंकार कर दिया मगर ज़्यादातर मज़दूर दूसरी जगहों पर काम करने चले गये। 8-10 दिन फैक्टी बन्द रही उसके बाद कुछ मज़दूरों को बटोरकर आध ी-अधूरी क्षमता से फ़ैक्ट्री चल रही है। मज़दूरों से एक ऐसे पत्र पर दस्तखत करा कर काम पर रखा गया है जिसमें लिखा था कि हमें यूनियन से कोई लेना-देना नही है। हम कभी यूनियन में शामिल नहीं होंगे। हम अपनी मर्जी से 12 घण्टा काम कर रहे हैं, हमें न्यूनतम मजदूरी मिलती है आदि।

हड़ताल के बाद से ठेका मज़दूरों तथा लूम आपरेटरों की मजदूरियाँ कुछ बढ़ गयी हैं लेकिन न्यूनतम मजदूरी सहित किसी भी श्रम कानून का पालन नहीं हो रहा है। इस आन्दोलन ने मज़दूरों की आँखें खोल दी ही हैं। उन्हें समझ आ गया है कि श्रम विभाग हो, जिला प्रशासन या जनप्रतिनिधि। मज़दूर के साथ कोई नहीं खड़ा होगा। उनकी एकता और संगठन ही उनके साथ आयेगा।

वी.एन. डायर्स कपड़ा मिल में फिर हड़ताल की तैयारी शुरू

जून में हुए आन्दोलन के बाद वी.एन. डायर्स कपड़ा मिल के मज़दूरो के साथ हुए समझौते को लागू करने को बाध्य हुआ मिलमालिक लगातार बौखलाहट में मज़दूरों के ख़िलाफ़ कार्रवाई कर रहा है। मजदूरों के साथ मार-पीट व गाली-गलौज के विरुद्ध हड़ताल की अगुवाई करने वाले तीन अगुआ मजदूरों बाबूराम चौधरी, जयहिन्द गुप्ता और अनिल श्रीवास्तव को उसने निलम्बित कर दिया। उसके बाद फिर मजदूरों के साथ मार-पीट के बाद दूसरी बार हड़ताल हो गयी। उसके बाद फिर तीन और मज़दूरों रामजी, अखिलेश तिवारी और विनोद मण्डल को निलम्बित कर दिया। अब दो महीने की घरेलू जांच की नौटंकी के बाद 20 नवम्बर को बाबूराम चौधरी, जयहिन्द गुप्ता और अनिल श्रीवास्तव को निष्कासित कर दिया गया है। मज़दूर पहले से ही इस साज़िश को जानते थें। उन्होंने अगली हड़ताल के लिए कमर कस ली है और तैयारी में जुट गये हैं।

12 घण्टे काम कराने की कोशिश नाकाम

अंकुर उद्योग लि, वी एन डायर्स धागा व कपड़ा मिल तथा जालानजी पालिटेक्स के मज़दूरों ने लड़कर काम के घण्टे आठ कराये थे लेकिन मालिकान फिर से 12 घण्टे काम कराने की जी-तोड कोशिश में लगे हैं। लगातार मौखिक दबाव बनाने के बाद अन्त में अंकुर के मालिकान ने एक नोटिस लगा दिया कि अब कम्पनी में 12 घण्टा काम होगा। इसके बाद मजदूरों ने टोलियाँ बनाकर रातभर कमरे-कमरे घूमकर प्रचार किया और तैयारी कर लिया कि काम आठ घण्टा ही करेंगे। इसके बाद अगले दिन सुबह वाली शिफ्ट 2 बजे के 10 मिनट पहले ही मशीनें बन्द कर बाहर आ गयी। बाहर खडी दुसरी शिफ्ट ने ताली बजाकर उसका स्वागत किया। दूसरी शिफ्ट को मालिक ने अन्दर नही लिया। फिर गेट पर ही एक मैराथन मीटिंग शाम तक हुयी। मजदूरों ने यह तय किया कि रात 10 बजे नहीं आयेंगे। दो बजे ही आयेंगे। अपने अधिकारों के प्रति वे जाग गये हैं इसका एहसास मालिक को करा दिया। अगले दिन दूसरी शिफ्ट नही चली। तीसरे दिन फिर काम के घण्टे आठ रहने की नोटिस लग गयी।

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?

(पेज 7 से आगे)

शत्रुओं में से एक है। हमें हर क़दम पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्राचीन हिन्दू राष्ट्र के गौरव के हर मिथक और झूठ का विरोध करना होगा और उसे जनता की निगाह में खण्डित करना होगा। इसमें हमें विशेष सहायता इन सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की जन्मकुण्डली से मिलेगी। निरपवाद रूप से अन्धराष्ट्रवाद का जुनून फैलाने में लगे सभी फ़ासीवादी प्रचारक और उनके संगठनों का काला इतिहास होता है जो ग़द्दारियों, भ्रष्टाचार और पतन की मिसालें पेश करता है। हमें बस इस इतिहास को खोलकर जनता के सामने रख देना है और उनके बीच यह सवाल खड़ा करना है कि यह "राष्ट्र" कौन है जिसकी बात फ़ासीवादी कर रहे हैं? वे कैसे राष्ट्र को स्थापित करना चाहते हैं? और किसके हित में और किसके हित की क़ीमत पर? "राष्ट्रवाद" के नारे और विचारधारा का निर्मम विखण्डन – इसके बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। राष्ट्र की जगह हमें वर्ग की चेतना को स्थापित करना होगा। बुर्जुआ राष्ट्रवाद की हर प्रजाति के लिए "राष्ट्र" बुर्जुआ वर्ग और उसके हित होते हैं। मज़दूर वर्ग को हाड़ गलाकर इस "राष्ट्र" की उन्नति के लिए खपना होता है। इसके अतिरिक्त कुछ भी सोचना राष्ट्र-विरोधी है। राष्ट्रवाद मज़दूरों के बीच छद्म गर्व बोध पैदा कर उनके बीच वर्ग चेतना को कुन्द करने का एक पूँजीवादी उपकरण है और इस रूप में उसे बेनक़ाब करना बेहद ज़रूरी है। यह न सिर्फ़ मज़दूरों के बीच किया जाना चाहिए, बल्कि हर उस वर्ग के बीच किया जाना चाहिए जिसे भावी समाजवादी क्रान्ति के मित्र के रूप में गोलबन्द किया जाना है।

8) सामाजिक जनवादी और संशोधनवादी मज़दूर आन्दोलन में सर्वहारा वर्ग चेतना को कुन्द करने का हर सम्भव प्रयास करते हैं। वे वर्ग संघर्ष की बजाय वर्ग सहयोग की कार्यदिशा को आन्दोलन के बीच पैठाने का काम करते हैं, हालाँकि बौद्धिक विमर्शों में वे भी वर्ग संघर्ष की बातें करते हैं। मज़दूरों को वर्ग सहयोग का उपदेश देते हुए पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने कुछ समय पहले कहा था कि हमें समझ लेना चाहिए कि वह दौर अब चला गया जब रूस या चीन की तरह हिंसक तरीक़े से क्रान्ति हो सके। मज़दूर वर्ग को पूँजीपति वर्ग के साथ सहयोग के दृष्टिकोण को लागू करना चाहिए। उद्योग की उन्नति में ही दोनों वर्गों का हित है। यहाँ पर बुद्धदेव भट्टाचार्य ने लगभग-लगभग शब्दश: वही बात कही थी जो एक जर्मन सामाजिक-जनवादी नेता ने कही थी। कार्ल लीज़न ने उद्योगपतियों से समझौते के समय कमोबेश यही बात जर्मनी में कही थी। कार्ल लीज़न जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी के एक नेता थे। कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को वर्ग सहयोग के ऐसे हर प्रयास को बेनक़ाब करना चाहिए और संशोधनवादियों की असलियत को मज़दूरों के सामने उघाड़कर रख देना चाहिए। उन्हें मज़दूर वर्ग को समझाना होगा कि श्रम और पूँजी की शक्तियों के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता। ऐतिहासिक तौर पर ये दोनों अन्तरविरोधी ताक़तें हैं और इतिहास ने उनके सामने एक ही विकल्प रखा है – संघर्ष, और इस संघर्ष में अन्तत: विजय श्रम की शक्तियों की होनी है।

9) हम कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को पूँजीवादी विकास के मौजूदा दौर में अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों पर विशेष रूप से ज़ोर देना होगा। आज भारत के मज़दूर वर्ग का 90 फ़ीसदी से भी अधिक हिस्सा असंगठित क्षेत्र में आता है। संगठित मज़दूरों की बड़ी आबादी सफ़ेद कॉलर के मज़दूरों में तब्दील हो रही है। यह आबादी अपने आपको मज़दूर की बजाय कर्मचारी कहलवाना पसन्द करती है और इसका बड़ा हिस्सा या तो संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों का हिस्सा बन चुका है या फिर फ़ासीवादी भारतीय मज़दूर संघ का, जो अब भारत की सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन है। अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के बीच फ़ासीवादी ताक़तें लगातार सुधार की गतिविधियों और कीर्तन-जागरण आदि जैसे धार्मिक क्रियाकलापों के ज़रिये आधार बनाने का प्रयास कर रही हैं। इस आबादी के फ़ासीवादीकरण के लिए उनके बीच सेवा भारती आदि जैसे उपक्रम चलाए जा रहे हैं और उन्हें भ्रष्ट करने की कोशिश की जा रही है। यह सही है कि मज़दूर आबादी के इस हिस्से का फ़ासीवादीकरण सबसे मुश्किल है लेकिन फिर भी हमें निरन्तरता के साथ इस आबादी को संगठित करने का प्रयास सबसे पहले करना होगा। वैसे भी असंगठित मज़दूर कुल मज़दूर आबादी की बहुसंख्या का निर्माण करते हैं, इसलिए हमें उनके इलाक़ाई संगठन बनाने, उनके बीच बच्चों के लिए स्कूल खोलने, सुधार की कार्रवाइयाँ करने और उनके बीच अदम्य और शक्तिशाली सामाजिक आधार बनाने की कार्रवाइयाँ करनी चाहिए। उनके बीच हमें निरन्तर, व्यापक और सघन राजनीतिक प्रचार करना होगा। पुराने असंगठित मज़दूर वर्ग की तरह यह नया असंगठित मज़दूर वर्ग वर्ग असचेत नहीं है, बल्कि घुमन्तू मज़दूर होने के कारण पूरे पूँजीपति वर्ग को अपने दुश्मन के तौर पर देखता है और संगठित होने की सम्भावना से सम्पन्न है। दूसरी बात यह है कि इस मज़दूर वर्ग का बड़ा हिस्सा युवा है जो हमारे लिए एक अच्छी बात है। इसी हिस्से के बीच से हम मज़दूर वर्ग के सबसे जुझारू संगठन बना सकते हैं और हमें बनाने होंगे। ज़ाहिर है कि असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के बीच कारख़ाना आधारित ट्रेड यूनियनें नहीं बन सकती हैं। इसलिए उनके बीच हमें इलाक़ाई ट्रेड यूनियनें बनानी चाहिए। ट्रेड यूनियन के अतिरिक्त, इलाक़ाई पैमाने के जुझारू लड़ाकू संगठन खड़े किये जाने चाहिए। जिस प्रकार जर्मनी में कारख़ानों में फ़ैक्ट्री ब्रिगेडें बनायी गयी थीं, उसी प्रकार हमें असंगठित मज़दूरों के रिहायशी इलाक़ों में ऐसे लड़ाकू संगठन खड़े करने चाहिए, जो उनकी ट्रेड यूनियन से अलग हों। ट्रेड यूनियनों का एक विशेष काम होता है और उन्हें उसी काम के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए। फ़ासीवादी हमलों को नाकाम करने के लिए मज़दूर वर्ग के अपने अलग लड़ाकू-जुझारू संगठन होने चाहिए।

10) फ़ासीवाद की कार्यनीति की एक ख़ास बात यह होती है कि अपने राजनीतिक और सांगठनिक हितों की पूर्ति और अपने दुश्मनों के सफाए के लिए यह आतंक की रणनीति का इस्तेमाल करता है। जर्मनी और इटली की ही तरह भारत के फ़ासीवादियों ने भी बजरंग दल, विश्व हिन्दू परिषद और वनवासी कल्याण आश्रम के नाम पर अपने आतंक समूह बना रखे हैं। ये आतंक समूह बुर्जुआ राज्य के उपकरणों के दायरे से बाहर बुर्जुआ वर्ग की तानाशाही को लागू करने का काम करते हैं। मज़दूर नेताओं, ट्रेड यूनियन नेताओं, कम्युनिस्टों, उदारपन्थियों पर हमले और उनकी हत्याओं का इतिहास भारत में भी मौजूद है। हड़तालों को तोड़ने के लिए ऐसे आतंक समूहों का इस्तेमाल फ़ासीवादियों ने भारत में भी किया है। महाराष्ट्र में हड़ताली मज़दूरों और उनके नेताओं पर शिवसेना की गुण्डा वाहिनियों के हमले को कौन भूल सकता है? हमें फ़ासीवाद को विचारधारा और राजनीति में तो परास्त करना ही होगा, लेकिन साथ ही हमें उन्हें सड़क पर भी परास्त करना होगा। इसके लिए हमें मज़दूरों के लड़ाकू और जुझारू संगठन बनाने होंगे। ग़ौरतलब है कि जर्मनी के कम्युनिस्टों ने फ़ासीवादी गिरोहों से निपटने के लिए कारख़ाना ब्रिगेडें खड़ी की थीं, जो सड़क पर फ़ासीवादी गुण्डों के हमलों का जवाब देने और उन्हें सबक़ सिखाने का काम कारगर तरीक़े से करती थीं। बाद में यह प्रयोग आगे नहीं बढ़ सका और फ़ासीवादियों ने जर्मनी में अपनी सत्ता क़ायम कर ली। मज़दूर वर्ग का बड़ा हिस्सा वहाँ अभी भी सामाजिक जनवादियों के प्रभाव में ही था और क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों की पकड़ उतनी मज़बूत नहीं हो पायी थी। लेकिन उस छोटे-से प्रयोग ने प्रदर्शित किया था कि फ़ासीवादी गुण्डों से सड़क पर ही निपटा जा सकता है। उनके साथ तर्क करने और वाद-विवाद करने की कोई गुंजाइश नहीं होती है। साम्प्रदायिक दंगों को रोकने और फ़ासीवादी हमलों को रोकने के लिए ऐसे ही दस्ते छात्र और युवा मोर्चे पर भी बनाए जाने चाहिए। छात्रों-युवाओं को ऐसे हमलों से निपटने के लिए आत्मरक्षा और जनरक्षा हेतु शारीरिक प्रशिक्षण और मार्शल आर्ट्स का प्रशिक्षण देने का काम क्रान्तिकारी छात्र-युवा संगठनों को करना चाहिए। उन्हें स्पोर्ट्स क्लब, जिम, मनोरंजन क्लब आदि जैसी संस्थाएँ खड़ी करनी चाहिए, जहाँ राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण और तार्किकता व वैज्ञानिकता के प्रसार का काम भी किया जाये।

11) हमें उदारवादी बुर्जुआ राज्य को लेकर जनता में मौजूद सभी विभ्रमों को खण्डित करने का काम करना होगा। हमें दिखाना होगा कि किस प्रकार पूँजीवाद की नैसर्गिक गति के कारण उदारवादी या कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य की नियति में ढह जाना ही लिखा है। इसकी नैसर्गिक गति पतन की तरफ़ होती है। फ़ासीवाद पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और राजसत्ता के ढहने और पतन की सूरत में ही पैदा होता है। वही स्थिति जो क्रान्तिकारी सम्भावना को जन्म देती है, प्रतिक्रियावादी सम्भावना को भी जन्म देती है। हमें उदारवादी पूँजीवाद की असलियत को जनता के सामने हर सम्भव मौक़े पर लाते हुए बताना होगा कि यह जनता को कुछ नहीं दे सकता और यह लगातार संकट के दलदल में धँसता जायेगा और इसके द्वारा मिलने वाले श्रम अधिकार, जनवादी अधिकार, नागरिक अधिकार लगातार ख़त्म होते जायेंगे।

12) हमें जनवादी, नागरिक व मानव अधिकारों के क्षरण और पतन के ख़िलाफ़ अपने नागरिक-जनवादी अधिकार संगठनों के ज़रिये संघर्ष करना होगा, जो हम जानते हैं कि एक हारी हुई लड़ाई होती है। लेकिन इसी हारी हुई लड़ाई को हम अपनी लम्बी लड़ाई में जीत का एक उपकरण बना सकते हैं। हमें इन अधिकारों के हनन और सिकुड़ते जनवादी स्पेस पर जनता के बीच लगातार प्रचार करना चाहिए और ख़ास तौर पर शिक्षित शहरी मध्यवर्ग के बीच यह प्रचार करना चाहिए। इसके ज़रिये हमें पूरे पूँजीवादी जनवाद की असलियत को जनता के सामने बेनक़ाब करना चाहिए और इसके बेहतर और ऐतिहासिक तौर पर प्रगतिशील सर्वहारा जनवाद के विकल्प को पेश करना चाहिए। इसके अलावा, हमें श्रमिक अधिकारों के हनन और पतन पर भी लगातार संघर्ष और प्रचार करते हुए राज्य को मजबूर करना चाहिए कि वह श्रमिक अधिकारों की पूर्ति करे। इसके अतिरिक्त, हमें सभी अपूर्ण जनवादी कार्यभारों को पूरा करने के लिए संघर्ष करना चाहिए। जिन देशों में पूँजीवाद किसी क्रान्ति के ज़रिये नहीं आया, उन सभी देशों में अपूर्ण जनवादी कार्यभारों की एक लम्बी सूची है। हमें इन अधिकारों के लिए संघर्ष करना चाहिए। इसके दो मक़सद हैं। एक तो यह पूँजीवादी राजसत्ता के 'ब्रीदिंग स्पेस' को घटाकर उसके लिए घुटन भरी स्थितियाँ पैदा करता है और दूसरा यह कि जनवादी कार्यभारों के पूरा होने के साथ समाज में तमाम वर्गों में प्रतिक्रिया का आधार कमज़ोर पड़ता है। यही कारण है कि अपूर्ण और अधूरे भूमि सुधारों को लागू करना भी क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों की एक माँग बनता है। यह गाँवों में प्रतिक्रिया की ज़मीन को कमज़ोर करता है और वर्ग चेतना को उभारता है। यहाँ एक बात ग़ौर करने वाली यह होती है कि बुर्जुआ व्यवस्था के बीच जनवादी अधिकारों की लड़ाई को लेकर मज़दूर आन्दोलन में एक सर्वखण्डनवादी अराजकतावादी नज़रिया कभी-कभी प्रभावी हो जाता है और हम सिकुड़ते जनवादी स्पेस के ख़तरों को समझ नहीं पाते हैं। हमें लगता है कि कुछ ठोस वर्ग संघर्ष किया जाये; नागरिक व जनवादी अधिकारों पर हमले के ख़िलाफ़ संघर्ष हमें अप्रासंगिक सा लगने लगता है। यह बहुत ख़तरनाक भटकाव है। हंगेरियाई कम्युनिस्ट **जॉर्ज लूकाच** ने इस प्रवृत्ति के ख़िलाफ़ अपनी **'ब्लम थीसिस'** में आगाह किया था और इसे आत्मघाती बताया था। जनवादी स्पेस के सिकुड़ने के साथ मज़दूर वर्ग को गोलबन्द और संगठित करने का काम भी कठिन होता जाता है। **लेनिन** ने यूँ ही नहीं कहा था कि बुर्जुआ जनवाद सर्वहारा वर्ग के लिए सर्वश्रेष्ठ युद्धभूमि है। इसलिए मज़दूर आन्दोलन को न सिर्फ़ श्रमिक अधिकारों पर हमले के ख़िलाफ़ लड़ना चाहिए, बल्कि उन्हें नागरिक व जनवादी अधिकारों पर हमले के ख़िलाफ़ भी लड़ना चाहिए। यह नागरिक पहचान पर उनका एक शक्तिशाली दावा भी होगा जो राजनीतिक संघर्ष को आगे ले जाने और मज़दूर वर्ग में राजनीतिक चेतना को विकसित करने का एक अहम क़दम होगा। **(अगले अंक में समाप्त)**

क्रान्तिकारी चीन ने प्रदूषण की समस्या का मुक़ाबला कैसे किया

और चीन के वर्तमान पूँजीवादी शासक किस तरह पर्यावरण को बरबाद कर रहे हैं!

प्रस्तुत लेख इस बात पर रोशनी डालता है कि समाजवादी चीनी जनता ने किसी प्रकार प्रदूषण और औद्योगिक कचरे का सफलतापूर्वक मुक़ाबला किया। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि इस लेख से पता चलता है कि यह काम ऐसे समाज के निर्माण के एक अंग के रूप में किया गया जिसका लक्ष्य हर प्रकार की वर्ग असमानताओं, उत्पीड़क सम्बन्धों और विचारों से छुटकारा पाना था। महत्वपूर्ण बात यह है कि जनसमुदाय इन समस्याओं को हल करने के क्रान्तिकारी मार्ग तक पहुँच और खाका बनाने लगा था। और यह सब वर्ग संघर्ष और समाजवाद के निर्माण के एक अंग के रूप में समाज में मौजूद उन ताक़तों से जूझते हुए किया गया जो चीन को पूँजीवादी रास्ते पर धकेलना चाहती थीं। इसने दिखा दिया कि प्रदूषण और पर्यावरण के विनाश का कारण पूँजीवादी उद्योग है न कि अपने आप में उद्योग। – सम्पादक

आज पूरी दुनिया में पर्यावरण बचाओ की चीख़-पुकार मची हुई है। कभी पर्यावरण की चिन्ता में दुबले हुए जा रहे राष्ट्राध्यक्ष, तो कभी सरकार की बेरुख़ी से नाराज़ एनजीओ आलीशान होटलों के एसी कमरों-सभागारों में मिल-बैठकर पर्यावरण को हो रहे नुक़सान को नियन्त्रित करने के उपाय खोजते फिर रहे हैं। लेकिन पर्यावरण के बर्बाद होने के मूल कारणों की कहीं कोई चर्चा नहीं होती। न ही चर्चा होती है उस दौर की जब जनता ने औद्योगिक विकास के साथ शुरू हुई इस समस्या को नियन्त्रित करने के लिए शानदार क़दम उठाए। जी हाँ, जनता ने! इसका एक उदाहरण क्रान्तिकारी चीन है, जहाँ 1949 की नव-जनवादी क्रान्ति के बाद कॉमरेड माओ के नेतृत्व में चीनी जनता ने इस मिथक को तोड़ने के प्रयास किए कि औद्योगिक विकास होगा तो पर्यावरण को नुकसान पहुँचेगा ही।

लेकिन समाजवादी दौर के चीन की उन उपलब्धियों पर चर्चा करने से पहले बेहतर होगा कि ''बाजार समाजवाद'' के नाम पर पूँजीवादी नीतियों पर चल रहे चीन में पर्यावरण की दुर्दशा पर नज़र डाल ली जाये।

पूँजीवादी "सुधारों" ने किया पर्यावरण को बर्बाद

तीस वर्षों के "सुधार" ने चीन के पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर डाला है। चीन में सीमित प्राकृतिक संसाधन और बेहद कम खेती योग्य जमीन है। ऐसे में चीन में किसी भी तरह का दीर्घकालिक विकास प्राकृतिक संसाधनों और खेती योग्य जमीन के संरक्षण पर ही आधारित हो सकता है। लेकिन तीस वर्षों के पूँजीवादी सुधारों में देश के लिए ज़रूरी नीतियों से उलट नीतियों पर अमल किया गया।

चीन में विश्व की खेती योग्य ज़मीन का केवल 9 प्रतिशत है, जबकि उसे दुनिया की 22 प्रतिशत आबादी को भोजन उपलब्ध कराना होता है। सुधारों के आरम्भ से अब तक कृषि भूमि को औद्योगिक और व्यापारिक इस्तेमाल के लिए देने और किसानों द्वारा खेती नहीं करने के कारण खेती योग्य ज़मीन में काफ़ी कमी आयी है।

इसके अलावा, चीन में प्रति व्यक्ति केवल 2,000 क्यूबिक मीटर पानी ही उपलब्ध है, जोकि पूरी दुनिया में उपलब्ध औसत पानी का एक चौथाई है। औद्योगिक उत्पादन और शहरीकरण की ऊँची दर के कारण पानी की खपत बढ़ गयी है, जिससे सिंचाई और ग्रामीण आबादी को बेहद कम पानी मयस्सर होता है। चीन के जल संसाधन मन्त्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, चीन की कुल 114,000 किलोमीटर की लम्बाई वाली नदियों में से 28.9 प्रतिशत का पानी ही अच्छी गुणवत्ता वाला है और 29.8 प्रतिशत पानी की गुणवत्ता ख़राब है। 16.1 प्रतिशत पानी मनुष्यों के छूने लायक भी नहीं है और नदियों का शेष 25.2 प्रतिशत पानी इतना प्रदूषित हो चुका है कि उसे किसी काम में नहीं लाया जा सकता।

प्रदूषण का आलम यह है कि 1990 के दशक के अन्त में, क्षेत्र के 17 करोड़ लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने वाली पीली नदी 226 दिनों तक सूखी रही। नदियाँ ही नहीं, बल्कि चीन में भूमिगत जल भी तेज़ी से कम हो रहा है। जल संसाधन मन्त्रालय के ही अनुसार, भूमिगत जल के तेज़ी से घटते स्तर ने भूकम्पों और भूस्खलनों के ख़तरे तथा ज़मीन के बंजर होने की समस्या को और बढ़ा दिया है। जल और भूमि प्रदूषण ग्रामीण आबादी के लिए घातक साबित हो रहा है; कुछ गाँवों में, कैंसर की दर राष्ट्रीय औसत से 20 या 30 प्रतिशत अधिक है। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग और चीन के पर्यावरण की तबाही निर्यात को बढ़ाकर जीडीपी की उच्च दर को क़ायम रखने की अन्धाधुन्ध रणनीति का सीधा परिणाम है।

जल प्रदूषण के साथ ही, वायु और भूमि प्रदूषण की समस्या भी बहुत गम्भीर हो चुकी है। दुनिया के 20 सबसे ज़्यादा प्रदूषित शहरों में से 16 शहर चीन के हैं। वायु प्रदूषण से शहरवासियों को साँस की गम्भीर बीमारियाँ हो रही हैं। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन ओईसीडी के एक अध्ययन के अनुसार चीन में 300 मिलियन लोग प्रतिदिन दूषित पानी पीते हैं, और 190 मिलियन लोग दूषित जल के कारण होने वाले रोगों से पीड़ित हैं। यही नहीं इस अध्ययन के अनुसार यदि जल्दी ही चीन में वायु प्रदूषण की समस्या को नियन्त्रित नहीं किया गया तो आने वाले 13 वर्षों में सांस सम्बन्धी बीमारियों से चीन के 600,000 लोगों की समय से पहले मौत हो जायेगी, जबकि 2 करोड़ लोग इन बीमारियों से पीड़ित होंगे।

क्रान्तिकारी चीन की जनता ने निकाला प्रदूषण की समस्या का हल

संशोधनवादियों की अगुवाई में चल रही पूँजीवादी नीतियों का पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव अब चीन की जनता के साथ ही साथ पूरी दुनिया के भी सामने है। अब ज़रा इस पर नज़र डाली जाए कि समाजवादी निर्माण (1976 में माओ के देहांत से पहले) के दौर में चीन की जनता ने पर्यावरण की समस्या का सामना कैसे किया।

1960 के दशक के अन्त में क्रान्तिकारी चीन में त्सित्सिहार दस लाख जनसंख्या वाला एक शहर था। ननचियांग नदी से प्राप्त होने वाली मछली पूरे प्रान्त की पैदावार के आधे के बराबर थी। लेकिन नदी में पायी जाने वाली मछलियों की संख्या दिन-ब-दिन काफ़ी कम होती जा रही थी। जाड़ों में जब नदी जम जाती थी तो बड़ी संख्या में मछलियाँ मर जाती थीं और वर्ष 1960 के मुक़ाबले में अब प्रतिवर्ष सिर्फ़ 12 प्रतिशत मछलियाँ पकड़ी जाने लगीं। ये मछलियाँ इसलिए मर रही थीं क्योंकि उद्योग प्रतिदिन रसायन युक्त 250,000 टन दूषित पदार्थ और कचरा नदी में प्रवाहित कर रहे थे।

1968 में त्सित्सिहार पार्टी कमेटी और शहर की क्रान्तिकारी कमेटी ने इस समस्या को हल करने का निश्चय किया। चौदह शोध संस्थानों से चालीस से अधिक वैज्ञानिकों एवं तकनीशियनों को त्सित्सिहार आने और स्थानीय मज़दूरों, मछुआरों व तकनीशियनों के साथ मिलकर काम करने, तथा नदी का सर्वेक्षण करने के लिए लामबन्द किया गया। उन्होंने पाया कि दिसम्बर से अप्रैल के मध्य तक, जब नदी जमी रहती थी, नदी की तलहटी में एक पीला चिपचिपा पदार्थ जम जाता था, जिससे पानी से एक भयानक दुर्गन्ध निकलती थी। नदी में एक प्रकार की फफून्द और कुछ कार्बनिक पदार्थ जमा होते जा रहे थे क्योंकि उसमें भारी मात्रा में गन्दा पानी और रसायन फेंके जाते थे। इन अवशिष्ट रसायनिक पदार्थों से युक्त जल सामान्य जल की तुलना में 22.5 गुना अधिक ऑक्सीजन सोख लेता था और यही वह कारण था जिससे मछलियाँ मर रही थीं।

मज़दूरों, पार्टी की क़तारों और वैज्ञानिकों की एक टीम को इस समस्या से निपटने के काम में लगाया गया। उन्होंने सबसे पहले आम लोगों के बीच जाकर, उनके विचारों को जाना और यह भी जानकारी ली कि समस्या से निपटने के बारे में वे क्या सोचते हैं। इन विचारों ने समस्या के हल के लिए सुस्पष्ट दिशानिर्देशों का खाका तैयार करने में मदद की।

1. जनता की भलाई प्रस्थान बिन्दु होना चाहिए।

2. भावी पीढ़ियों के हितों को ध्यान में रखना चाहिए - समस्या का दूरगामी समाधान निकलना चाहिए न कि सिर्फ़ तात्कालिक समाधान।

3. समस्या पर सभी पहलुओं से विचार करना चाहिए ताकि एक आपदा को दूर करने से कोई दूसरी आपदा न पैदा हो जाये।

स्वावलम्बन पर बल देते हुए टीम ने आर्थिक ज़रूरतों के लिए ऊपर के आदेशों का इन्तज़ार नहीं किया। उन्होंने एक प्रस्ताव तैयार किया और जनता के साथ विचार-विमर्श करके अन्तिम योजना तैयार कर ली गयी। कारख़ाने अब अपने हानिकारक कूड़े-कचरे का उचित प्रबंधन करने और उन्हें उपयोगी बनाने के रास्ते निकालने के लिए स्वयं उत्तरदायी होंगे। रसायनों से युक्त गन्दा और बेकार पानी अब जलाशयों में एकत्र किया जायेगा और उसे साफ़ कर सिंचाई में इस्तेमाल किया जायेगा।

त्सित्सिहार शुगर रिफ़ाइनरी में औद्योगिक कूड़े-कचरे को उपयोगी चीज़ों में बदलने के लिए नयी शॉप स्थापित की गयी। अवशिष्ट पदार्थों से प्रतिवर्ष 1400 टन कम लागत का बढ़िया सीमेण्ट पैदा किया जाता था। जले हुए कोयले से प्रतिवर्ष 20 लाख ईंटें तैयार की जाती थीं जिनका इस्तेमाल और नई शॉपों को तैयार करने में किया जाता था। ये शॉप गन्ने की जड़ों से अल्कोहलिक स्पिरिट तैयार करती थीं, रद्दी शक्कर से प्रतिदिन 2 टन डिस्टिल्ड अल्कोहल तैयार करती थीं और एक पेपर मिल के निकट के गड्ढे से प्रतिवर्ष लगभग 150 टन लुगदी इकट्ठा कर उनसे पैकेजिंग पेपर बनाती थीं।

जून 1970 में, मज़दूरों, किसानों, सैनिकों, छात्रों और स्थानीय निवासियों ने मिलकर गन्दे पानी को सिंचाई के लिये इस्तेमाल करने की एक परियोजना में भाग लिया। प्रतिदिन 5000 से अधिक लोग कार्यस्थल पर आते थे और छह महीने के भीतर ही एक विशाल जलाशय और बाँध का निर्माण कर दिया गया।

जनवरी 1971 में, ननचियांग के जल में ऑक्सीजन की मात्रा मापने के लिये हुए परीक्षण से यह पता चला कि पिछले वर्ष की तुलना में अब पांच से दस गुना अधिक ऑक्सीजन मौजूद है। पीला पदार्थ और दुर्गन्ध दोनो ग़ायब हो गये थे और नदी में मछलियों की संख्या बढ़ने लगी थी।

यह तो महज़ एक उदाहरण है, दरअसल त्सित्सिहार के लोगों की ही तरह पूरे चीन में प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए लाखों लोगों को लामबन्द किया गया। लेकिन यह बिना वर्ग संघर्ष के नहीं हुआ। इस प्रश्न पर जमकर संघर्ष हुआ कि यह सब 'किसके लिये' और 'किस लिये' है?

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान मज़दूरों के बीच बहस छेड़ दी गयी। क्या किसी कारख़ाने को सिर्फ़ स्वयं की और अपने उत्पादन की परवाह करनी चाहिए या पूरी जनता की? क्या वे 'मुनाफ़े को कमान में रखने' के रास्ते पर जा रहे हैं या संयंत्र को संचालित करने सम्बन्धी तमाम फैसले, 'सच्चे दिल से जनता की सेवा करने' और मज़दूरों-किसानों के स्वास्थ्य और जीवन-निर्वाह को ध्यान में रखते हुए लिये जाने चाहिए?

समूचे चीन में "तीन क़िस्म के रद्दी पदार्थों - रद्दी द्रव पदार्थ, रद्दी गैसों और धातु-कचरे के ख़िलाफ़ जनअभियान" शुरू किया गया। यह नारा दिया गया कि "हानिकारक चीज़ों को लाभदायक चीज़ों में बदल दो।" पुन: "रद्दी पदार्थों" के प्रश्न पर किस तरह विचार किया जाये। क्या यह औद्योगिक समाज की अपरिहार्य "बुराई" है? क्या हर तरह के रद्दी पदार्थों को इकट्ठा करके उन्हें कहीं और फेंक देने मात्र से इस समस्या से निपटा जा सकता है? क्या यह एक ऐसी समस्या है जिससे हर व्यक्ति और हर कारख़ाने को सरोकार रखना चाहिए?

किसी चीज़ को पैदा करने में संसाधनों का कुछ अंश नये उत्पादों में रूपान्तरित हो जाता है और शेष "रद्दी" हो जाता है। लेकिन प्रश्न यह था कि इस "रद्दी पदार्थ" को किस तरह देखा जाये? किस दृष्टिकोण से और किस रवैये से? मज़दूरों के व्यापक समुदाय को माओ की दार्शनिक कृतियों का अध्ययन करने के लिए लामबन्द किया गया, विशेषकर अन्तरविरोध के नियम का अध्ययन करने के लिये जो हर चीज़ को दो में बाँटता है। उन्होंने यह रवैया अख़्तियार किया कि "वस्तुगत विश्व को जानने और उसे बदलने की लोगों की क्षमता की कोई सीमा नहीं है।"

एकांगी, आधिभौतिक दृष्टिकोण से, रद्दी पदार्थों को उपयोगी नहीं बनाया जा सकता। लेकिन क्रान्तिकारी, भौतिकवादी और द्वंद्वात्मक दृष्टि यह बताती है कि किसी एक दशा में "रद्दी पदार्थ" भिन्न दशाओं के अन्तर्गत मूल्यवान हो सकता है। और इस प्रकार "रद्दी पदार्थ" को उपयोगी पदार्थ में बदला जा सकता है। यदि यूँ ही छोड़ दिया जाये तो औद्योगिक कचरा वातावरण को विषाक्त करता है और लोगों को नुक़सान पहुँचाता है। लेकिन जब इन रद्दी पदार्थों के संघटन (कम्पोजिशन) का अध्ययन किया गया और उनमें बदलाव किया गया तो यह पाया गया कि उन्हें उपयोगी कच्चे मालों और उत्पादों में बदला जा सकता है। इस प्रकार इसे एक "निपटारे की समस्या" के रूप में देखने के बजाय जनसमुदाय ने इसे "उपयोग की समस्या" के रूप में देखे जाने के लिए संघर्ष किया। और यह सब इसलिए हुआ क्योंकि समाजवादी निर्माण के दौर में समाज की चालक शक्ति मुनाफ़ा नहीं, बल्कि मनुष्य था। इसी वजह से प्रदूषण और पर्यावरण संरक्षण की समस्या से काफ़ी हद तक निपटा जा सका।

• संदीप

सर्वहारा के महान नेता स्तालिन के जन्मदिवस (21 दिसम्बर) के अवसर पर

जोसेफ़ स्तालिन : क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच की विभाजक रेखा

मज़दूर वर्ग के पहले राज्य सोवियत संघ की बुनियाद रखी थी महान लेनिन ने, और पूरी पूँजीवादी दुनिया के प्रत्यक्ष और खुफ़िया हमलों, साज़िशों, घेरेबन्दी और फ़ासिस्टों के हमले को नाकाम करते हुए पहले समाजवादी राज्य का निर्माण करने वाले थे जोसेफ़ स्तालिन। स्तालिन शब्द का मतलब होता है इस्पात का इन्सान – और स्तालिन सचमुच एक फ़ौलादी इन्सान थे। मेहनतकशों के पहले राज्य को नेस्तनाबूद कर देने की पूँजीवादी लुटेरों की हर कोशिश को धूल चटाते हुए स्तालिन ने एक फ़ौलादी दीवार की तरह उसकी रक्षा की, उसे विकसित किया और उसे दुनिया के सबसे समृद्ध और ताक़तवर समाजों की क़तार में ला खड़ा किया। उन्होंने साबित कर दिखाया कि मेहनतकश जनता अपने बलबूते पर एक नया समाज बना सकती है और विकास के ऐसे कीर्तिमान रच सकती है जिन्हें देखकर पूरी दुनिया दाँतों तले उँगली दबा ले। उनके प्रेरक नेतृत्व और कुशल सेनापतित्व में सोवियत जनता ने हिटलर की फ़ासिस्ट फ़ौजों को मटियामेट करके दुनिया को फ़ासीवाद के क़हर से बचाया।

यही वजह है कि दुनिया भर के पूँजीवादी स्तालिन से जी-जान से नफ़रत करते हैं और उन्हें बदनाम करने और उन पर लांछन लगाने तथा कीचड़ उछालने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ते। सर्वहारा वर्ग के इस महान शिक्षक और नेता के निधन के 56 वर्ष बाद भी मानो उन्हें स्तालिन का हौवा सताता रहता है। वे आज भी स्तालिन से डरते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि रूस की और दुनिया भर की मेहनतकश जनता के दिलों में स्तालिन आज भी ज़िन्दा हैं। कुछ ही दिन पहले रूसी इतिहास के महानतम व्यक्तित्व का पता लगाने के लिए रूस में लाखों लोगों के बीच कराये गये एक सर्वेक्षण में जब स्तालिन का नाम सबसे आगे आने लगा तो चकराये और घबराये शासक वर्गों ने जोड़-तोड़ करके किसी तरह उन्हें तीसरे नम्बर पर कराया। हाल ही में रूस की यात्रा पर गये कुछ भारतीय पत्रकारों ने लौटकर लिखा है कि इन दिनों रूस में जगह-जगह स्तालिन की मूर्तियाँ लगायी जा रही हैं। दरअसल, रूसी अवाम के दिलों से स्तालिन को कभी हटाया ही नहीं जा सका था। रूस के नये पूँजीपतियों के कुछ लम्पट छोकरों द्वारा कुछ जगहों पर लेनिन और स्तालिन की मूर्तियाँ तोड़े जाने को बुर्जुआ मीडिया ने बार-बार दिखाकर ऐसा समाँ बाँध दिया था मानो पूरे रूस से लेनिन और स्तालिन का नामोनिशान मिटा दिया गया हो

यह अफ़सोस की बात है कि आज आम घरों के नौजवानों और मज़दूरों में से भी बहुत कम ही ऐसे हैं जो स्तालिन और उनके महान कामों और विश्व क्रान्ति में उनके योगदान के बारे में जानते हैं। बुर्जुआ कुत्सा प्रचार के चलते बहुतों के मन में झूठी धारणाएँ बैठी हुई हैं। बहुतेरे प्रगतिशील बुद्धिजीवी और राजनीतिक कार्यकर्ता भी निरन्तर और चौतरफ़ा बुर्जुआ प्रचार के कारण पूर्वाग्रह ग्रस्त और भ्रमित हैं। लेकिन क्रान्तिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए यह बेहद ज़रूरी है कि स्तालिन को ठीक से समझा जाये और सही पक्ष में खड़ा हुआ जाये। स्तालिन का नाम और उनके काम क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच की विभाजक रेखा बन चुके हैं।

रूसी ज़ार के साम्राज्य की एक उत्पीड़ित राष्ट्रीयता जॉर्जिया के गोरी शहर में 1879 में जन्मे जोसेफ़ विसारियोनोविच जुगाशविली ने एक युवा क्रान्तिकारी के तौर पर काम करते समय अपना गुप्त नाम स्तालिन रखा था। उनके पिता गाँव के एक ग़रीब मोची थे जो बाद में एक जूता कारख़ाने में मज़दूर बन गये थे। उनकी माँ ज़मीन्दारों के ग़ुलाम भूदासों की बेटी थी। इस तरह स्तालिन ने मज़दूरों और किसानों की ज़िन्दगी को क़रीब से जाना था और जॉर्जिया से होने के नाते वे सह भी समझते थे कि ज़ारशाही रूस किस तरह अपने साम्राज्य के ग़ैर-रूसी लोगों को उत्पीड़ित करता था।

पादरी बनने के लिए धार्मिक विद्यालय में पढ़ाई करते समय ही, पन्द्रह वर्ष की उम्र में वे भूमिगत मार्क्सवादी क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये और अठारह वर्ष की उम्र में वे रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी में शामिल हो गये जो आगे चलकर कम्युनिस्ट पार्टी बनी। जल्दी ही स्तालिन ने जॉर्जिया की राजधानी तिफ़लिस और औद्योगिक शहर बातुम में मज़दूरों को संगठित करना शुरू कर दिया। उन्हें कई बार गिरफ़्तार किया गया और फिर साइबेरिया निर्वासित कर दिया गया। लेकिन 1904 में वे साइबेरिया के निर्वासन से पुलिस को चकमा देकर निकल आये और फिर से मज़दूरों को संगठित करने में जुट गये। 1905 की असफल रूसी क्रान्ति के दौरान और उसके कुचले जाने के बाद स्तालिन प्रमुख बोल्शेविक भूमिगत और सैनिक संगठनकर्ताओं में से एक थे। पार्टी से जुड़ने के समय ही स्तालिन ने समझ लिया था कि लेनिन ही क्रान्ति के मुख्य सैद्धान्तिक नेता हैं और पार्टी के भीतर चलने वाले वैचारिक संघर्षों में वे हमेशा पूरी मज़बूती के साथ लेनिन की सही लाइन के पक्ष में खड़े रहे। 1912 में उन्हें केन्द्रीय कमेटी में चुना गया।

फ़रवरी 1917 में रूस के मज़दूरों और किसानों ने निरंकुश ज़ारशाही के शासन को उखाड़ फेंका। उदारवादी बुर्जुआ वर्ग उनके साथ था और ज़ारशाही के पतन के बाद उसी ने शासन सँभाला। क्रान्तिकारी होने का दावा करने वाली रूस की ज़्यादातर पार्टियों ने यह कहना शुरू कर दिया कि रूसी सर्वहारा वर्ग अभी इतना कमज़ोर और पिछड़ा हुआ है कि वह राजनीतिक सत्ता नहीं सँभाल सकता। उनकी दलील थी कि सर्वहारा को अभी नयी बुर्जुआ सरकार का समर्थन करना चाहिए और पूँजीवादी विकास को आगे बढ़ाने में मदद करनी चाहिए। समाजवादी क्रान्ति अभी भविष्य की बात है। बोल्शेविकों के भीतर भी इस तरह के विचार घुसपैठ कर गये थे। मार्च में क़ैद से छूटकर स्तालिन जब केन्द्रीय कमेटी के निर्देश पर सेण्ट

जोसेफ़ स्तालिन
(जन्म : 21 दिसम्बर 1879
निधन : 5 मार्च 1953)

पीटर्सबर्ग में काम सँभालने आये तो उन्होंने पाया कि पार्टी के भीतर तीखा आन्तरिक संघर्ष जारी है। उन्होंने लेनिन का पक्ष लिया कि मज़दूर वर्ग को तत्काल समाजवादी क्रान्ति की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। स्तालिन को बोल्शेविकों के अख़बार 'प्राव्दा' की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी और उन्होंने इस विचार को व्यापक अवाम के बीच ले जाने के लिए अख़बार का बख़ूबी इस्तेमाल किया। अक्टूबर में जब केन्द्रीय कमेटी ने फैसला कर लिया कि सेण्ट पीटर्सबर्ग के मज़दूर और सैनिक उसके नेतृत्व में शीत प्रासाद पर धावा बोलकर सर्वहारा सरकार की स्थापना करेंगे तो कई बुद्धिजीवी नेताओं को इससे बड़ी परेशानी हुई। ये लोग क्रान्ति की बातें तो करते रहे थे लेकिन शायद उन्हें उम्मीद नहीं थी कि एक वास्तविक क्रान्तिकारी परिस्थिति उनके सामने खड़ी हो जायेगी। इनमें से दो, ज़िनोवियेव और कामेनेव ने तो बुर्जुआ अख़बारों को बता दिया कि बोल्शेविक सत्ता पर कब्ज़ा करने की गुप्त योजना बना रहे हैं। सत्ता पर कब्ज़े के बाद केन्द्रीय कमेटी के एक और सदस्य राइकोव ने इन दोनों के साथ मिलकर बुर्जुआ पार्टियों से गुप्त समझौता किया जिसके तहत बोल्शेविक सत्ता से इस्तीफ़ा दे देते, प्रेस फिर से बुर्जुआ वर्ग के हाथों में सौंप दिया जाता और लेनिन को कोई भी पद नहीं सँभालने दिया जाता। लेकिन उनकी एक न चली।

अक्टूबर क्रान्ति के बाद चले लम्बे गृहयुद्ध के दौरान स्तालिन एक दृढ़निश्चयी, कुशल और प्रेरक सैन्य नेता के रूप में उभरे। त्रात्स्की लाल सेना का प्रमुख था लेकिन मज़दूरों और आम सिपाहियों पर भरोसा करने के बजाय वह ज़ारशाही फ़ौज के अफ़सरों को अपनी ओर मिलाने और उन्हें क्रान्तिकारी सेना की कमान सौंपने की कोशिशों में ज़्यादा समय ख़र्च करता था। जनता के जुझारूपन और साहस पर भरोसा करने के बजाय वह तकनीक पर ज़्यादा यक़ीन करता था। इसका नतीजा था कि लाल सेना को एक के बाद एक हारों का सामना करना पड़ा। दूसरी ओर स्तालिन मज़दूरों और किसानों के नज़रिये से सैन्य स्थिति को समझते थे और उनकी क्षमताओं और सीमाओं से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे।

1919 में स्तालिन को वोल्गा नदी के किनारे महत्वपूर्ण शहर ज़ारित्सिन के मोर्चे पर रसद आपूर्ति बहाल करने की ज़िम्मेदारी देकर भेजा गया। ज़ारित्सिन को क्रान्ति की दुश्मन फ़ौजों ने घेर रखा था और शहर के भीतर भी दुश्मन की ताक़तों ने घुसपैठ कर लिया था। स्तालिन ने त्रात्स्की का अतिक्रमण करके फ़ौरन कमान अपने हाथों में सँभाल ली और फ़ौलादी हाथों से काम लेते हुए फ़ौजी अफ़सरों और पार्टी के भीतर से प्रतिक्रान्तिकारियों को निकाल बाहर किया और फिर शहर और पूरे क्षेत्र को दुश्मन से आज़ाद करा दिया। नाराज़ त्रात्स्की ने स्तालिन को वापस बुलाने की माँग की लेकिन इसके बाद तो स्तालिन को गृहयुद्ध के हर अहम मोर्चे पर भेजा जाने लगा। हर जगह स्तालिन ने फौरन ही क्रान्तिकारी जनता का सम्मान अर्जित कर लिया और कठिनतम परिस्थितियों में भी जीत हासिल करने में उनका नेतृत्व किया। गृहयुद्ध ख़त्म होने तक स्तालिन एक ऐसे व्यक्ति के तौर पर स्थापित हो चुके थे जिसे मालूम था कि काम कैसे किया जाता है। यह गुण अभिजात वर्गों से आये उन बुद्धिजीवी कम्युनिस्ट नेताओं में नहीं था जो अपने को सर्वहारा वर्ग के महान नेता समझते थे। अप्रैल 1922 में स्तालिन को कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का जनरल सेक्रेटरी बनाया गया।

लेनिन के निधन के बाद रूस में समाजवाद का निर्माण जारी रखने के सवाल पर पार्टी के भीतर एक तीखा संघर्ष छिड़ गया। त्रात्स्की और उसके समर्थकों का कहना था कि सर्वहारा वर्ग अकेले सोवियत संघ में शासन में टिका नहीं रह सकेगा और वे यूरोप के सर्वहारा वर्ग के उठ खड़े होने पर उम्मीदें लगाये हुए थे। दूसरी ओर स्तालिन का मानना था कि शोषित-उत्पीड़ित किसानों की भारी आबादी क्रान्ति में रूसी सर्वहारा का साथ देगी और सोवियत जनता अपने बूते पर न केवल समाजवाद का निर्माण करने में सक्षम है बल्कि देश के भीतर और बाहर के ताक़तवर दुश्मनों से उसकी हिफ़ाज़त भी कर सकती है। पार्टी के भीतर के निराशावादियों और बाहरी प्रतिक्रान्तिकारियों की हरचन्द कोशिशों और साज़िशों के बावजूद इतिहास ने साबित किया कि स्तालिन सही थे।

जब बोल्शेविकों ने 1917 में सत्ता सँभाली थी तो पूरे रूसी साम्राज्य की हालत ख़स्ता थी। रूस के बड़े शहरों में अराजकता और बदहाली का आलम था। नयी सरकार काम शुरू करती, इसके पहले ही ज़मीन्दारों, पूँजीपतियों और पुराने शासन के जनरलों ने पूरी ताक़त जुटाकर उस पर हमला बोल दिया। ब्रिटेन, फ़्रांस, जापान और पोलैण्ड की एकजुट फ़ौजों के साथ-साथ अमेरिका और दर्जनभर दूसरे पूँजीवादी देशों की सैनिक टुकड़ियों ने भी मज़दूरों के राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए रूस पर चढ़ाई कर दी।

तीन साल तक पूरा सोवियत संघ गृहयुद्ध की लपटों में झुलसता रहा। 1920 में गृहयुद्ध ख़त्म हुआ तो खेती की उपज आधी रह गयी थी, जबकि क्रान्ति के पहले ही खेती की हालत इतनी ख़राब थी कि किसानों की भारी आबादी भयंकर ग़रीबी में डूबी रहती थी। उद्योग की हालत तो और भी बुरी थी। बहुत सी खदानें और कारख़ाने तबाह हो गये थे। यातायात और परिवहन की दशा ख़राब थी। बड़े पैमाने के उद्योग की पैदावार गृहयुद्ध के पहले के मुक़ाबले 1/7 रह गयी थी। क्रान्ति के बाद बड़े जागीरदारों की ज़मीनें छीनकर किसानों में बाँट दी गयी थीं लेकिन अब गाँवों के पूँजीपति जिन्हें कुलक कहते थे, किसानों को फिर से उज़रती गुलामी और असामीगीरी में वापस धकेल रहे थे। आधुनिक उद्योग, खेती, स्वास्थ्य और शिक्षा को विकसित करने के लिए ज़रूरी तकनीकी ज्ञान और कौशल कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित थे जिनमें से ज़्यादातर समाजवाद के ख़िलाफ़ थे। मेहनतकश जनता की भारी आबादी अशिक्षित थी। सोवियत संघ दुनिया में अलग-थलग पड़ गया था और ताक़तवर पूँजीवादी देशों ने उसकी घेरेबन्दी कर रखी थी। ज़्यादातर देशों ने उसकी आर्थिक नाकेबन्दी की हुई थी, उसे मान्यता देने से भी इन्कार करते थे और पूरी पूँजीवादी दुनिया में "लाल शैतानों" का नामोनिशान मिटा देने के दावे किये जा रहे थे। उस वक़्त दुनिया की हालत ऐसी थी कि पूँजीवादी राष्ट्रों के अलावा ज़्यादातर देश उनके उपनिवेश या नवउपनिवेश थे।

जब 1953 में स्तालिन का निधन हुआ, तो सोवियत संघ दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी औद्योगिक, वैज्ञानिक और सैन्य ताक़त था और इस बात के स्पष्ट संकेत थे कि इन सभी क्षेत्रों में वह जल्दी ही अमेरिका को भी पीछे छोड़ देगा। और यह ज़बरदस्त तरक़्क़ी तब हुई थी जब दूसरे महायुद्ध के दौरान फ़ासिस्टों को पराजित करने में उसे इतना भीषण नुक़सान उठाना पड़ा जो किसी भी अन्य देश को कई दशकों तक पीछे धकेलने के लिए काफ़ी था। युद्ध में सोवियत जनता ने अपने दो करोड़ बेहतरीन बेटे-बेटियों को गँवाया था और उसके आर्थिक संसाधनों की भारी तबाही हुई थी। लेकिन चन्द ही वर्षों में स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत जनता ने नये-नये चमत्कार रचते हुए सोवियत संघ को फ़िर से अगली कतार में जा खड़ा किया। देश से भुखमरी और अशिक्षा पूरी तरह ख़त्म हो चुके थे। खेती का पूरा सामूहिकीकरण हो चुका था और उसकी पैदावार कई गुना बढ़ चुकी थी। सभी नागरिकों को नि:शुल्क बेहतरीन चिकित्सा सुविधा उपलब्ध थी। हर स्तर पर शिक्षा मुफ़्त थी। सोवियत संघ में दुनिया के किसी भी देश से ज़्यादा किताबें छपती थीं और वहाँ बोली जाने वाली हर भाषा में छपती थीं। बेरोज़गारी, महँगाई, वेश्यावृत्ति, नशाख़ोरी आदि का तो 1930 के दशक तक ही ख़ात्मा हो चुका था। दुनिया में पहली बार महिलाओं को चूल्हे-चौखट की दासता से निजात मिली थी और वे जीवन के हर क्षेत्र में बराबरी से आगे बढ़ रही थीं। विश्वयुद्ध की भीषण तबाही और उथल-पुथल के दौरान और उसके बाद भी सोवियत संघ की विभिन्न राष्ट्रीयताओं की जनता एकजुट थी। यह सब कुछ स्तालिन के

(पेज 11 पर जारी)

चीनी क्रान्ति के महान नेता माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

कम्युनिस्ट जीवनशैली के बारे में माओ त्से-तुङ के कुछ उद्धरण

मानव जाति का इतिहास अनिवार्यता के राज्य से मुक्ति के राज्य तक निरन्तर विकास का इतिहास है। इतिहास की इस प्रक्रिया का कभी अन्त नहीं होता। एक ऐसे समाज में जहाँ वर्ग मौजूद हों, वर्ग-संघर्ष कभी ख़त्म नहीं होगा। और एक ...वर्गहीन समाज में, नये और पुराने के बीच तथा सही और ग़लत के बीच संघर्ष कभी ख़त्म नहीं होगा। उत्पादन के संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोग के क्षेत्र में, मानव जाति लगातार प्रगति करती रहती है तथा प्रकृति का निरन्तर विकास होता रहता है; वे एक ही स्तर पर कभी नहीं ठहरते। इसलिए मनुष्य को लगातार अपने अनुभवों का निचोड़ निकालते रहना चाहिए, नयी-नयी खोजें और नये-नये आविष्कार करते रहना चाहिए तथा निरन्तर सृजन करते रहना चाहिए और आगे बढ़ते जाना चाहिए। ठहराव, नाउम्मीदी, बेहरक़ती और ख़ुशफ़हमी वाले जो भी विचार हैं, वे सब ग़लत हैं। वे सब इसलिए ग़लत हैं क्योंकि वे न तो पिछले लगभग दस लाख वर्षों के सामाजिक विकास के ऐतिहासिक तथ्यों से मेल खाते हैं और न ही प्रकृति के उन ऐतिहासिक तथ्यों से जिनकी जानकारी हमें प्राप्त हो चुकी है (जैसे प्रकृति का वह रूप जो खगोलीय पिण्डों, पृथ्वी, प्राणी-जीवन और अन्य नैसर्गिक घटनाओं के इतिहास से प्रकट होता है)।

"चीन लोक गणराज्य की तीसरी राष्ट्रीय जन-प्रतिनिधि सभा के प्रथम अधिवेशन में प्रधान मन्त्री चाउ एन-लाई द्वारा प्रस्तुत सरकारी काम की रिपोर्ट" में उद्धृत (21-22 दिसम्बर 1964)

सच्चे दिल से आत्मालोचना करना एक अन्य विशेषता है जो हमारी पार्टी तथा बाक़ी तमाम राजनीतिक पार्टियाँ के बीच फ़र्क़ कर देती है। जैसा कि हम कहते हैं, अगर किसी कमरे में नियमित रूप से झाड़ू न लगाया गया तो उसमें धूल जमा हो जायेगी; अगर हम रोज़ाना अपना मुँह नहीं धोयेंगे, तो उस पर मैल जम जायेगी। हमारे साथियों के दिमाग़ पर और हमारी पार्टी के काम पर भी धूल जमा हो सकती है और उसे झाड़ू से साफ़ करने और धोने की ज़रूरत होती है। कहावत है – "बहता पानी कभी नहीं सड़ता और किवाड़ के कब्जे को कभी दीमक नहीं लगती"। इसका मतलब यह है कि जो वस्तु लगातार गतिशील रहती है उसके अन्दर कीटाणुओं और दूसरे जीवों की घुसपैठ नहीं हो सकती। अपने काम की नियमित रूप से जाँच करते रहना तथा इस प्रक्रिया के दौरान एक जनवादी कार्यशैली का विकास करना, न आलोचना से डरना और न आत्मालोचना से, तथा इस प्रकार की लोकप्रिय चीनी सूक्तियों को लागू करना जैसे "जो कुछ तुम जानते हो, वह सब बिना किसी संकोच के बता दो", "कहने वाले को दोषी न ठहराओ और उसकी बात को एक चेतावनी समझो", तथा "अगर तुम ग़लतियाँ कर चुके हो तो उन्हें सुधार लो और अगर तुमने ग़लतियाँ न की हों तो उनसे बचते रहो"– यही एकमात्र कारगर तरीक़ा है जिसके ज़रिये हम अपने साथियों के विचारों और अपने पार्टी-संगठन को सभी प्रकार की राजनीतिक धूल और कीटाणुओं से बचा सकते हैं।

"मिलीजुली सरकार के बारे में" (24 अप्रैल 1945), संकलित रचनाएँ, ग्रन्थ 3

हम कम्युनिस्टों में यह क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि हम सभी बातों में अपने को आम जनता के साथ एकरूप कर सकें। अगर हमारे पार्टी-सदस्य बन्द कमरे में बैठे रहकर सारी ज़िन्दगी गुज़ार दें और दुनिया का सामना करने व तूफ़ान का मुक़ाबला करने के लिए कभी बाहर ही न निकलें, तो चीनी जनता को उससे क्या फ़ायदा होगा? रत्तीभर भी नहीं, और इस तरह के पार्टी-सदस्य हमें नहीं चाहिए। हम कम्युनिस्टों को दुनिया का सामना करना चाहिए और तूफ़ान का मुक़ाबला करना चाहिए; यह दुनिया जन-संघर्षों की विशाल दुनिया है तथा यह तूफ़ान जन-संघर्षों का ज़बरदस्त तूफ़ान है।

"संगठित हो जाओ!" (29 नवम्बर 1943), संकलित रचनाएँ, ग्रन्थ 3

इस बात की गारण्टी करने के लिए कि हमारी पार्टी व हमारा देश अपना रंग न बदले, हमें न सिर्फ़ सही दिशा और सही नीतियाँ अपनानी चाहिए, बल्कि दसियों लाख ऐसे उत्तराधिकारियों को भी प्रशिक्षित करना चाहिए और उनका पालन-पोषण करना चाहिए जो सर्वहारा क्रान्ति के कार्य को आगे बढ़ाना जारी रखेंगे।

अन्ततोगत्वा, सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य के उत्तराधिकारियों को प्रशिक्षित करने का सवाल यह है कि क्या ऐसे लोग होंगे या नहीं जो सर्वहारा

माओ त्से-तुङ
(जन्म : 26 दिसम्बर 1893
निधन : 9 सितम्बर 1976)

क्रान्तिकारियों की पुरानी पीढ़ी द्वारा शुरू किये गये मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्तिकारी कार्य को आगे बढ़ाना जारी रखेंगे, क्या पार्टी व राज्य का नेतृत्व सर्वहारा क्रान्तिकारियों के हाथ में रहेगा या नहीं, क्या हमारी आने वाली पीढ़ियाँ मार्क्सवाद-लेनिनवाद द्वारा दिखाये गये सही रास्ते पर आगे बढ़ना जारी रखेंगी या नहीं, अथवा दूसरे शब्दों में कहा जाये तो क्या हम चीन में ख्रुश्चेव के संशोधनवाद के उदय की सफलतापूर्वक रोकथाम कर सके हैं या नहीं? संक्षेप में, यह एक बेहद महत्त्वपूर्ण सवाल है, हमारी पार्टी व हमारे देश के लिए ज़िन्दगी-मौत का सवाल है। यह सवाल सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्य के लिए सौ साल तक, हज़ार साल तक, यही नहीं दस हज़ार साल तक एक बुनियादी महत्त्व का सवाल रहेगा। सोवियत संघ में जो परिवर्तन हुए हैं, उनके आधार पर साम्राज्यवादी फ़रिश्ते यह आस लगाये बैठे हैं कि चीनी पार्टी की तीसरी या चौथी पीढ़ी में "शान्तिपूर्ण विकास" हो जायेगा। हमें साम्राज्यवादियों की इन भविष्यवाणियों को धूल में मिला देना चाहिए। अपने सर्वोच्च संगठनों से लेकर बिलकुल बुनियादी पाँतों तक, हमें हर जगह क्रान्तिकारी कार्य के उत्तराधिकारियों के प्रशिक्षण और पालन-पोषण की ओर लगातार ध्यान देना चाहिए।

सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य के योग्य उत्तराधिकारी बनने के लिए कौन-कौन सी शर्तें पूरी करनी होती हैं?

उन्हें सच्चे मार्क्सवादी-लेनिनवादी होना चाहिए तथा ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद का जामा पहनने वाला संशोधनवादी है।

उन्हें ऐसे क्रान्तिकारी होना चाहिए जो चीन और समूची दुनिया की जनता की भारी बहुसंख्या की तन-मन से सेवा करें, तथा ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो अपने देश के विशेषाधिकार-प्राप्त तबके के मुट्ठीभर लोगों और विदेशी साम्राज्यवाद व प्रतिक्रियावाद के हितों की सेवा करता है।

उन्हें ऐसे सर्वहारा राजनीतिज्ञ होना चाहिए जो लोगों की भारी बहुसंख्या के साथ एकताबद्ध होने और काम करने की क्षमता रखते हों। उन्हें न सिर्फ़ ऐसे लोगों के साथ एकता क़ायम करनी चाहिए जो उनके विचारों से सहमत हों, बल्कि ऐसे लोगों के साथ भी एकता क़ायम करने में निपुण होना चाहिए जो उनके विचारों से सहमत न हों, यहाँ तक कि ऐसे लोगों के साथ भी एकता क़ायम करने में निपुण होना चाहिए जो पहले उनका विरोध कर चुके हों और अब ग़लत साबित हो चुके हों। लेकिन उन्हें ख्रुश्चेव जैसे कैरियरवादियों और षड्यन्त्रकारियों से ख़ासतौर पर सतर्क रहना चाहिए तथा इस प्रकार के बुरे तत्त्वों को पार्टी व राज्य का नेतृत्व किसी भी स्तर पर नहीं हथियाने देना चाहिए।

उन्हें पार्टी की जनवादी केन्द्रीयता को लागू करने के लिहाज से आदर्श बन जाना चाहिए, "जन-समुदाय से लेकर जन-समुदाय को ही लौटा देने" के उसूल के आधार पर नेतृत्व करने के तरीक़े में माहिर बन जाना चाहिए, तथा जनवादी कार्यशैली अपना लेनी चाहिए और दूसरों की बात अच्छी तरह सुननी चाहिए। उन्हें ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो पार्टी की जनवादी केन्द्रीयता का उल्लंघन करता है, मनमाने जुल्म ढाता है, साथियों पर आकस्मिक प्रहार करता है अथवा स्वेच्छाचारी और तानाशाही तरीक़े से काम करता है।

उन्हें नम्र और विवेकशील होना चाहिए तथा हेकड़ी और जल्दबाज़ी से बचना चाहिए; उन्हें आत्मालोचना की भावना से ओतप्रोत होना चाहिए तथा उनके अन्दर अपने काम की त्रुटियों और कमियों को सुधारने का साहस होना चाहिए। उन्हें ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो अपनी तमाम ग़लतियों पर पर्दा डालता है तथा तमाम श्रेय ख़ुद लेकर तमाम दोष दूसरों के मत्थे मढ़ देता है।

सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य के उत्तराधिकारी, जन-संघर्षों के दौरान आगे आते हैं तथा क्रान्ति के महान तूफ़ानों में तपते-मँजते हैं। यह ज़रूरी है कि जन-संघर्षों के लम्बे दौर में कार्यकर्त्ताओं को जाँचा-परखा जाये तथा उत्तराधिकारियों को चुना जाये और प्रशिक्षित किया जाये।

"ख्रुश्चेव का नक़ली कम्युनिज़्म और दुनिया के लिए उसके ऐतिहासिक सबक़" में उद्धृत (14 जुलाई 1964)

कोई नौजवान क्रान्तिकारी है अथवा नहीं, यह जानने की कसौटी क्या है? उसे कैसे पहचाना जाये? इसकी कसौटी केवल एक है, यानी यह देखना चाहिए कि वह व्यापक मज़दूर-किसान जनता के साथ एकरूप हो जाना चाहता है अथवा नहीं, तथा इस बात पर अमल करता है अथवा नहीं? क्रान्तिकारी वह है जो मज़दूरों व किसानों के साथ एकरूप हो जाना चाहता हो, और अपने अमल में मज़दूरों व किसानों के साथ एकरूप हो जाता हो, वरना वह क्रान्तिकारी नहीं है या प्रतिक्रान्तिकारी है। अगर कोई आज मज़दूर-किसानों के जन-समुदाय के साथ एकरूप हो जाता है, तो आज वह क्रान्तिकारी है; लेकिन अगर कल वह ऐसा नहीं करता या इसके उल्टे आम जनता का उत्पीड़न करने लगता है, तो वह क्रान्तिकारी नहीं रह जाता अथवा प्रतिक्रान्तिकारी बन जाता है।

"नौजवान आन्दोलन की दिशा" (4 मई 1929), संकलित रचनाएँ, ग्रन्थ 2

बुद्धिजीवी लोग जब तक तन-मन से क्रान्तिकारी जन-संघर्षों में नहीं कूद पड़ते, अथवा आम जनता के हितों की सेवा करने और उसके साथ एकरूप हो जाने का पक्का इरादा नहीं कर लेते, तब तक उनमें अक्सर मनोगतवाद और व्यक्तिवाद की प्रवृत्तियाँ बनी रहती हैं, उनके विचार अव्यावहारिक होते हैं और उनकी कार्रवाइयों में दृढ़ निश्चय की कमी बनी रहती है। इसलिए हालाँकि चीन में क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों का जन-समुदाय एक हिरावल दस्ते की भूमिका अथवा एक सेतु की भूमिका अदा कर सकता है, फिर भी यह नहीं हो सकता कि उनमें से सभी लोग अन्त तक क्रान्तिकारी बने रहेंगे। कुछ लोग बड़ी नाज़ुक घड़ी में क्रान्तिकारी पाँतों को छोड़ जायेंगे और निष्क्रिय बन जायेंगे, यहाँ तक कि उनमें से कुछ लोग क्रान्ति के दुश्मन भी बन जायेंगे। बुद्धिजीवी लोग केवल दीर्घकालीन जन-संघर्षों के दौरान ही अपनी कमियों को दूर कर सकते हैं।

"चीनी क्रान्ति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी" (दिसम्बर 1939), संकलित रचनाएँ, ग्रन्थ 2

जोसेफ़ स्तालिन : क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच की विभाजक रेखा

(पेज 10 से आगे)

कुशल नेतृत्व में ही सम्भव हो सका था।

सोवियत संघ दुनियाभर की संघर्षरत जनता के लिए प्रेरणा और मदद का सम्बल बना हुआ था। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चीन की जनता साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के जुवे को उखाड़ फेंक चुकी थी। कोरिया, वियतनाम और पूरे हिन्दचीन में साम्राज्यवादी ताक़तें पीछे हट रही थीं। विश्वयुद्ध के दौरान फ़ासिस्टों को खदेड़ रही सोवियत सेना की मदद से स्थानीय कम्युनिस्टों के नेतृत्व में लड़ रही छापामार शक्तियों ने पूर्वी यूरोप के राजतन्त्रों और फ़ासिस्ट सैनिक तानाशाहियों को उखाड़ फेंका था और इन सभी देशों में लोक जनवादी सत्ताएँ क़ायम हो चुकी थीं। उपनिवेशों और नवउपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष आगे डग भर रहे थे और दुनिया की क़रीब एक तिहाई आबादी उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त हो चुकी थी। अफ़्रीका महाद्वीप की जनता जाग उठी थी। पूरी दुनिया की लड़ रही जनता एक स्वर से स्तालिन को अपना दोस्त और नेता मानती थी।

इसीलिए स्तालिन सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के मंसूबे रखने वालों की राह की सबसे बड़ी बाधा थे और पूरी दुनिया के बुर्जुआओं की आँखों में लगातार खटकते थे। स्तालिन से हुई कुछ सैद्धान्तिक चूकों और परिस्थितियों के भयंकर दबाव में हुई कुछ ग़लतियों का फ़ायदा उठाकर रूस में पार्टी और समाज के भीतर उभरे नये पूँजीवादी तत्त्वों ने स्तालिन के निधन के बाद 1956 में सोवियत संघ में सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लिया। उन्होंने इतिहास की धारा को पलट दिया और करोड़ों मेहनतकशों की क़ुर्बानी के दम पर बने समाजवादी जनतन्त्र को एक पूँजीवादी देश में बदल डाला। अपने इस घिनौने काम को जायज़ ठहराने के लिए ज़रूरी था कि वे स्तालिन को ग़लत साबित करें और उनके ख़िलाफ़ लोगों के मन में नफ़रत पैदा करें। पूरी दुनिया के पूँजीपतियों ने ख़ुशी-ख़ुशी इस काम में उनका साथ दिया और आज तक उनका यह झूठा अभियान जारी है।

लेकिन झूठ की अपनी तमाम फ़ैक्ट्रियों को दिनोरात चलाकर भी वे दुनिया की मेहनतकश जनता के दिलों से स्तालिन की याद को और उनकी शिक्षाओं को कभी मिटा नहीं सकेंगे। मार्क्स-एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन और माओ की दिखायी राह पर चलते हुए दुनिया के मज़दूर पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को चकनाचूर करके समाजवाद का निर्माण करेंगे और शोषणविहीन, वर्गविहीन कम्युनिस्ट समाज के लक्ष्य की ओर आगे बढ़ेंगे। यही इतिहास का नियम है और ऐसा होकर रहेगा।

– सत्यप्रकाश

पंजीयन संख्या 71980/99 | डाक पंजीयन संख्या SSP/LW-NP/399/2009-11 | प्रेषक डाकघर - महानगर | प्रेषण तिथि - माह की 13, 14, 15 तारीख़

लुधियाना की सड़कों पर हज़ारों मज़दूरों के गुस्से का लावा फूटा

रोज़-रोज़ के शोषण, अपमान और उत्पीड़न के विरुद्ध लाखों प्रवासी मज़दूरों में बरसों से असन्तोष सुलग रहा है

4 दिसम्बर को लुधियाना की सड़कों पर हज़ारों मज़दूरों का प्रदर्शन और पुलिस द्वारा उनके दमन की घटना सारे देश के अख़बारों और ख़बरिया टीवी चैनलों की सुर्खियों में रही। लेकिन मज़दूरों के इस आन्दोलन और उनके दमन की सही-सही तस्वीर किसी ने पेश नहीं की। किसी ने प्रदर्शनकारी मज़दूरों को उप्रदवी कहा तो किसी ने उत्पाति। एक मशहूर पंजाबी अख़बार ने मज़दूरों को दंगाकारियों का नाम दिया। एक अख़बार ने मज़दूरों के प्रदर्शन को बवालियों द्वारा की गयी हिंसा और तोड़-फोड़ कहा। एक अंग्रेज़ी अख़बार ने लुधियाना की इन घटनाओं को प्रवासी मज़दूरों और स्थानीय लोगों के बीच की हिंसा कहकर ग़लत प्रचार किया। उन पूँजीवादी अख़बारों ने, जो मज़दूरों के पक्ष में लिखने वाले महसूस भी हुए, यूपी-बिहार के क्षेत्रीय नज़रिये से ही लिखा और घटनाक्रम को इस तरह पेश किया जैसे यह यू.पी.-बिहार के नागरिकों और पंजाब के नागरिकों के बीच की लड़ाई हो। इस घटनाक्रम का सही-सही ब्योरा और उसके पीछे के असल कारण इन पूँजीवादी अख़बारों और टी.वी. चैनलों से लगभग ग़ायब रहे; और इन्होंने कुल मिलाकर लोगों को ग़लत जानकारी मुहैया कराकर मज़दूरों के इस विरोध प्रदर्शन को बदनाम किया, इसके बारे में देश की जनता को गुमराह और भ्रमित किया।

दिल्ली से अमृतसर जाने वाले नेशनल हाइवे जी.टी. रोड से सटे लुधियाना के फोकल प्वाइण्ट क्षेत्र में अक्टूबर से ही बाइकर्स गैंग की दहशत थी। रात को जब मज़दूर कारख़ानों से छुट्टी मिलने पर घर लौट रहे होते तो मोटरसाइकल पर सवार गुण्डे बेसबाल, लोहे की रॉडों, चाकू आदि हथियारों से उन पर हमला करते और लूट लेते। पिछले दो महीनों में ही ऐसे डेढ़ सौ से भी अधिक हमले हुए। इन वारदातों में अनेक मज़दूरों की जानें गयीं। मज़दूर लगातार गुण्डों-लुटेरों का शिकार हो रहे थे और दहशत में जी रहे थे लेकिन इसके बावजूद सरकार, प्रशासन और पुलिस के कानों पर जूँ तक न रेंगी।

3 दिसम्बर को तीन मज़दूर बाइकर्स गैंग के हमले का शिकार हुए। कुछ मज़दूर इकट्ठा होकर अपने एक साथी पर हुए हमले की रिपोर्ट दर्ज करवाने लुधियाना की ढंढारी कलाँ चौकी पर पहुँचे। लेकिन पुलिस ने उनकी बात सुनने, शिकायत दर्ज करने और उचित क़दम उठाने की बजाय मज़दूरों को ही गालियाँ देनी शुरू कर दीं, और रिपोर्ट दर्ज करने के बजाय उन्हें चौकी से भगा दिया। पुलिस के इस व्यवहार से गुस्साये सैकड़ों मज़दूर ढंढारी पुलिस चौकी पर पहुँचे। इस पर भी पुलिस ने उनकी एक न सुनी। पुलिस द्वारा उनकी समस्या की अनदेखी और अपमानित करने वाले रवैये से भड़के मज़दूरों ने जी.टी. रोड जाम कर दिया। मज़दूरों की शिकायत की सुनवाई करने के बजाय पुलिस अब भी मज़दूरों को भगाने का रवैया अपनाये हुई थी। जब बड़ी संख्या में पुलिसबल बुलाकर मज़दूरों पर भारी दमन की तैयारी होने लगी तो मज़दूर समझ गये कि अब पुलिस शान्तिपूर्वक उनकी बात सुनने वाली नहीं है। पुलिस के रवैये ने मज़दूरों को इतनी बुरी तरह भड़का दिया कि भड़के हुए मज़दूरों ने वहाँ खड़े कुछ वाहनों की तोड़-फोड़ करनी शुरू कर दी और कुछ को आग लगा दी। पुलिस इसी बहाने की तलाश में थी। अब पुलिस ने मज़दूरों पर जमकर लाठियाँ बरसायीं। पुलिस ने निर्ममतापूर्वक मज़दूरों से सड़क खाली करवायी।

> मज़दूरों का अपने साथ हुए अन्याय के ख़िलाफ़ गुस्सा पूरी तरह जायज़ था, लेकिन मज़दूरों का विरोध प्रदर्शन पूरी तरह स्वयंस्फूर्त था, जिसमें जनवादी और क्रान्तिकारी नेतृत्व का अभाव था, और क्षेत्रीय राजनीति करने वालों और आवारा तत्वों की घुसपैठ थी। इसलिए मज़दूरों का यह विरोध-प्रदर्शन कुचला जाना तय था। लेकिन मज़दूरों के इस विरोध-प्रदर्शन ने दिखा दिया कि जब मज़दूर एकजुट होकर शोषकों का सामना करते हैं तो किस तरह सत्ताधारियों के हथियारबन्द दस्तों को भी दाँतों तले उँगलियाँ दबानी पड़ती हैं।

मज़दूरों पर जमकर लाठियाँ बरसाने से भी पुलिस का मन न भरा। पुलिस ने मज़दूरों की बस्ती में जाकर घरों से निकाल-निकालकर मज़दूरों की पिटाई की। पुलिस ने महिलाओं, बच्चों और बूढ़ों तक को नहीं बख्शा। सारी रात पुलिस के अत्याचार का ताण्डव होता रहा। पुलिस को ग़लतफ़हमी थी कि इससे मज़दूरों में दहशत फैल जायेगी और वे फिर कभी पुलिस का मुक़ाबला करने की हिम्मत नहीं करेंगे। लेकिन अगले दिन सड़कों पर मज़दूरों के उमड़े सैलाब ने पुलिस की ग़लतफ़हमी दूर कर दी।

रात में पुलिस द्वारा निर्मम अत्याचार का शिकार हुए, क्रोध से अत्यधिक भड़के 10 हज़ार के लगभग मज़दूरों ने 4 दिसम्बर की सुबह विरोध प्रदर्शन किया। मज़दूरों ने फ़ोकल प्वाइण्ट

गुण्डों की पिटाई से घायल मज़दूर

एरिया में मार्च करके कारख़ानों का काम बन्द करवाया और जी.टी. रोड जाम कर दिया। अब मज़दूर रेलवे ट्रैक भी जाम करके धरने पर बैठ गये। सारे ज़िले से भारी पुलिसबल मँगवाया गया। लेकिन प्रदर्शनकारी मज़दूरों के विशाल जनसमूह के सामने पुलिस की कोई कार्रवाई करने की हिम्मत तक न हुई। इलाक़े में कर्फ़्यू लगा दिया गया। लेकिन मज़दूर डटे हुए थे। पुलिस को पिछले अनुभवों से पता था कि कर्फ़्यू और लाठी-गोली से मज़दूरों को दबाया नहीं जा सकता। पुलिस ने नयी रणनीति अख़्तियार की। पुलिस द्वारा मज़दूरों को पीटने के लिए भारी संख्या में गुण्डों को बुलाया गया। राजनीतिक पार्टियों के गुण्डा-गिरोहों ख़ासकर यूथ कांग्रेस के गुण्डों-लम्पट नौजवानों और कारख़ाना मालिकों द्वारा रखे गये भाड़े के गुण्डों ने आसपास के इलाक़ों में रहने वाली पंजाबी आबादी को यह झूठ बोलकर गुमराह किया और भड़काया कि यूपी-बिहार के 'भइयों' की भीड़ पंजाबियों पर हमला करने जा रही है। अब पुलिस और गुण्डों ने झूठ बोलकर भड़काये गये बड़ी संख्या में आम पंजाबी आबादी को साथ लेकर मज़दूरों पर हमला बोल दिया। पुलिस की यह चाल कामयाब रही। ये तस्वीरें मज़दूरों पर किये गये जालिमाना हमले की दर्दनाक कहानी बयान कर रही हैं।

मज़दूरों को खदेड़ने के बाद मज़दूर आबादी वाले लगभग पाँच थाना क्षेत्रों में कर्फ़्यू लगा दिया गया। लेकिन गुण्डों के लिए कोई कर्फ़्यू नहीं था। मज़दूरों को घरों से निकाल-निकालकर पीटा जाना जारी था। अनेकों औरतों के कपड़े तक फाड़े गये। कई मज़दूर औरतें बलात्कार का शिकार हुईं। 4 दिसम्बर की रात में ढंढारी पुलिस चौकी के बिल्कुल पीछे बने मज़दूरों के एक बेड़े पर, जिसमें लगभग 150 कमरे हैं, तलवारों से लैस कोई 40 गुण्डों ने हमला कर दिया। कइयों को गम्भीर रूप में जख्मी कर दिया गया, अनेक कमरों के दरवाज़े-खिड़कियाँ तोड़ डाले गये। ये गुण्डे जाते हुए यह धमकी देकर गये कि सुबह तक सभी लोग पंजाब छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो सभी को ज़िन्दा जला दिया जायेगा। गुण्डों के चले जाने के बाद पहले ही सोची-समझी चाल के अनुसार पुलिस शिकायत दर्ज करने पहुँच गयी, जबकि यह सबकुछ पुलिस चौकी के बिलकुछ पास ही हो रहा था। और भी कई जगहों पर पुलिस और गुण्डों ने मिलकर मज़दूरों की मार-काट की, उनके घरों को आग लगायी, तोड़-फोड़ की। गुण्डों ने एक मूँगफली बेचने वाले के सिर पर लोहे की रॉड मारकर कत्ल कर दिया। 4 दिसम्बर के दिन और रात को लगातार ऐसी घटनाएँ होती रहीं, वहीं अगले दिनों में भी पुलिस और गुण्डे मज़दूर बस्तियों में ख़ौफ़ का माहौल पैदा करते रहे। साथ ही 40 से अधिक मज़दूरों को जेल में डाल दिया गया और सैकड़ों अनजान लोगों पर केस बना दिया। पुलिस यूनियन कार्यकर्ताओं की तलाश में घूम रही है और किसी को भी उठाकर इन केसों में उलझा सकती है।

लेकिन, अक्टूबर से एक तरफ़ बाइकर्स गैंग का आतंक और दूसरी तरफ़ पुलिस की अनदेखी – हज़ारों मज़दूरों के सड़कों पर उतर आने का तत्कालिक कारण था। असल में इसके पीछे लम्बे समय से मज़दूरों के दिलों में जमा होता रहा गुस्से का बारूद था जिसे बाइकर्ज गैंग के आतंक और इस पर मज़दूरों के प्रति पुलिस की बेरुखी ने आग दिखा दी।

लुधियाना के मज़दूर पूरे देश के मज़दूरों की तरह पूँजीपतियों के भयंकर लूट-शोषण का शिकार हैं। कारख़ानों में मज़दूरों के हक़ में कोई नियम-क़ानून लागू नहीं हैं। अधिकतर मज़दूर 12-14 घण्टे खटने के बाद भी सरकार द्वारा हैल्पर के लिए तय आठ घण्टे की दिहाड़ी का न्यूनतम वेतन (लगभग 3400/-) भी नहीं कमा पाते। वे भयंकर ग़रीबी का शिकार हैं। मालिकों को बेहिसाब मुनाफ़ा कमाकर देने वाले मज़दूर मानवीय जीवन की न्यूनतम ज़रूरत भी पूरी नहीं कर पाते।

पुलिस की शह पर स्थानीय छुटभैये नेताओं और गुण्डों ने मज़दूरों को बर्बरता से पीटा

बाइकर्ज गैंग द्वारा मज़दूरों पर किये जा रहे हमलों में मज़दूरों को हो रहे जान-माल के नुक़सान के लिए कारख़ाना मालिक भी ज़िम्मेदार हैं। मज़दूरों का यह अधिकार बनता है कि उनके घर आने-जाने की व्यवस्था मालिक की ओर से की जाये। लेकिन कारख़ाना मालिक तो कारख़ाने के भीतर भी मज़दूरों की सुरक्षा के इन्तज़ाम करने को तैयार नहीं, बाहर की तो बात ही क्या की जाये। कहने की ज़रूरत नहीं कि मालिकों की लूट की चक्की में पिसने वाले मज़दूर सिर्फ़ यू.पी. और बिहार से आकर यहाँ नहीं बसे और काम कर रहे हैं, बल्कि पंजाब में पहले से ही रह रही बहुत बड़ी आबादी भी इन दमघोटू कारख़ानों में अपना ख़ून-पसीना बहाती है और मालिकों के लूट-शोषण का शिकार होती है। इस भयंकर लूट-शोषण और ग़रीबी का शिकार यह सारी मज़दूर आबादी पूँजीपतियों से अत्यधिक नफ़रत करती है।

यू.पी.-बिहार से पंजाब में आकर बसे और काम कर रहे मज़दूरों के साथ अपने ही देश में पल-पल प्रवासियों जैसा व्यवहार किया जाता है। उन्हें हर जगह जलील होना पड़ता है, अपमान सहना पड़ता है। पुलिस-प्रशासन से तो वे किसी भी तरह के न्याय की उम्मीद कर ही नहीं सकते। वहाँ उनकी समस्याओं की कोई सुनवाई नहीं है। हर पुलिस थाने, हर चौकी, हर सरकारी दफ़्तर में उन्हें जलील किया जाता है।

पुलिस द्वारा एक बार अख़बारों में यह प्रचार छेड़ा गया कि पंजाब में होने वाले अधिकतर अपराधों के पीछे इन यू.पी.-बिहार के प्रवासियों का हाथ होता है। लेकिन जब आँकड़े सामने लाये गये तो यह हक़ीकत सामने आयी कि सिर्फ़ 5 प्रतिशत अपराधों में ही यू.पी.-बिहार से आये लोग शामिल थे। इस तरह पुलिस के प्रचार अभियान की हवा निकल गयी। लेकिन पुलिस-प्रशासन समय-समय पर ऐसे बयान फिर भी देता रहता है।

मध्यवर्ग यह समझता है कि इन्हीं ने आकर पंजाब को गन्दा किया है। अपनी ग़रीबी की असल जड़ को न समझने के कारण और मज़दूर वर्गीय चेतना न होने के चलते पंजाबी ग़रीब जनता का बड़ा हिस्सा भी यू.पी.-बिहार से आये मज़दूरों को नफ़रत की निगाह से देखता है। उन्हें लगता है कि उनकी ग़रीबी-बेरोज़गारी का कारण यही लोग हैं जिन्होंने उनके हिस्से का रोज़गार छीन लिया है, कि ये कम मज़दूरी पर काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं, इसलिए उन्हें भी कम वेतन मिलता है। सिमरनजीत सिंह मान वाले शिरोमणी अकाली दल (अमृतसर) जैसे कट्टर सिख संगठन उनके ख़िलाफ़ लोगों में हमेशा जहर भरते रहते हैं। इनका एक ज़हरीला नारा है – भइया भगाओ, पंजाब बचाओ।

इस सबके चलते इस मज़दूर आबादी के ज़ेहन में गुस्से का बारूद भरा हुआ है जो समय-समय पर विस्फोटित होता रहता है। लेकिन कुल मिलाकर अब तक मज़दूरों का यह गुस्सा स्वयंस्फूर्त ढंग से बिना किसी लम्बी तैयारी के पूँजीपतियों, पुलिस-प्रशासन के ख़िलाफ़ निकलता रहता है। 3 और 4 दिसम्बर को सड़कों पर मज़दूरों का फूटा गुस्सा भी सिर्फ़ बाइकर्ज़ गैंग के आतंक और इस सम्बन्ध में पुलिस की बेरुखी से ही नहीं पैदा हुआ था, बल्कि लम्बे अर्से से उनको पल-पल सहने पड़

(पेज 2 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डॉ. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : **डॉ. दूधनाथ, सुखविन्दर** • सम्पादकीय पता : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 006** • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ